सेठ नन्द लाल और एक अन्य

बनाम

हरियाणा राज्य और अन्य

(Seth Nand Lal and Another

v.

State of Haryana and Others)

(9 मई, 1980)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, न्यायाधिपति पी० एन० भगवती, वी० आर० कृष्ण अय्यर, वी० डी० तुलजापुरकर और ए० पी० सेन)

संविधान, 1950—अनुच्छेद 31-क [सपठित हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज, ऐक्ट, 1972 (1972 का 26)]—कृषि सुधार से संबंधित विधान अनुच्छेद 31-क के अन्तर्गत आ जाएगा—ऐसे विधान को संविधान द्वारा गारण्टीकृत मूल अधिकारों में से किसी से असंगति के या किसी के न्यूनन के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती—हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1972 सांविधानिक रूप से विधिमान्य है।

हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1972 (1972 का 26)—धारा 3(एफ) तथा 4 (सपठित संविधान, 1950, अनुच्छेद 14)—"कुटुम्ब" की संकल्पना—अधिकतम सीमा नियत करने के लिए दोहरा मानदण्ड—कुटुम्ब की कृत्रिम परिभाषा तथा दोहरा मानदण्ड अपनाने के लिए पर्याप्त औचित्य है—ये उपबन्ध विधिमान्य हैं तथा इनसे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं होता है।

हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1972 (1972 का 26)—धारा 8 तथा 9 (सपठित संविधान, 1950, अनुच्छेद 14)—भूमि के चयन के बारे में घोषणा करने के अधिकार का पति को दिया जाना—इससे पत्नी के प्रति कोई विभेद नहीं होता है तथा धारा 8 और 9 से संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं होता है।

हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1972 (1972 का 26)—धारा 18(7)—"अपील का अधिकार"—इस अधिकार के प्रयोग के लिए कुछ शर्तों का अधिरोपित किया जाना—शर्तें दुर्भर नहीं हैं इसलिए वे अनुचित निर्बन्धन की कोटि में नहीं आती हैं—विधानमण्डल ऐसी शर्तें अधिरोपित करने के लिए सक्षम है—धारा 18(7) विधिमान्य है।

हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज रूल्स, 1973—नियम 5(1) तथा 5(2) [सपठित हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1972 (1972 का 26), धारा 4]—अधिकतम सीमा का प्रभावशील अधिरोपण धारा 4 द्वारा ही किया गया है, न कि नियम 5 द्वारा इसलिए विधायी कृत्य का कार्यपालिका को प्रत्यायोजन नहीं किया गया है—नियम 5(1) तथा 5(2) विधिमान्य हैं—ये धारा 4 की परिधि से बाहर नहीं जाते हैं और अधिकारातीत नहीं हैं।

1976 में यथा संशोधित हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1972 के कुछ उपबन्धों की शक्तिमता को पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय में इस आधार पर चुनौती देते हुए कई रिट पिटीशन फाइल किए गए थे कि वे उपबन्ध अस्पष्ट, अनिश्चित, संदिग्ध और परस्पर असंगत थे और इसलिए उन्हें अभिखण्डित किया जाना चाहिए तथा न तो संविधान के अनुच्छेद 31-क से और न ही अनुच्छेद 31-ख से ऐसे उपबन्धों की व्यावृत्ति हो सकती है। उच्च न्यायालय ने यह अभिवचन इस आधार पर नामंजूर कर दिया था कि किसी विधानमण्डल द्वारा अधिनियमित ऐसा विधान जो उसकी सक्षमता के भीतर हो और जिससे संविधान के भाग 3 द्वारा गारण्टीकृत किसी मूल अधिकार का उल्लंघन न होता हो तथा जिससे संविधान के किसी अन्य उपबन्ध का उल्लंघन न होता हो, न तो इस आधार पर कि उसके उपबन्ध अस्पष्ट थे और न ही इस आधार पर कि वे अनिश्चित संदिग्ध या या परस्पर असंगत थे, अधिकारातीत घोषित किया जा सकता है। अतः उच्च न्यायालय ने सभी रिट पिटीशन खारिज कर दिए थे। उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं। इन अपीलों के अलावा उच्चतम न्यायालय में कई रिट पिटीशन तथा विशेष इजाजत पिटीशन भी फाइल किए गए जिनमें समय-समय पर यथा संशोधित हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज, ऐक्ट, 1972 को लगभग एक जैसे आधारों पर ही चुनौती दी गई है। अपीलें तथा पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—इस बात का खण्डन नहीं किया जा सकता है कि यदि कोई अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 31-क के अन्तर्गत आ जाता है तो वह अनुच्छेद 14, 19 और 31 द्वारा गारण्टीकृत मूल अधिकारों में से किसी से असंगति या किसी के न्यूनन के आधार पर चुनौती से उन्मुक्त होगा। हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1972 उसमें किए गए संशोधनों सहित, जो कि अनिवार्य रूप से कृषि जोतों पर अधिकतम सीमा अधिरोपित करने, अधिशेष क्षेत्र के अर्जन और उसके समाज के भूमिहीन तथा दुर्बल वर्गों को वितरण के लिए आशयित है तथा सारतः और वस्तुतः एक ऐसा विधान है जो कि कृषि सुधार से सम्बन्धित है, स्पष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 31-क के अन्तर्गत आता है और इसलिए उसे ऊपर उल्लिखित उन्मुक्तता प्राप्त होगी। अधिनियम तथा सम्बद्ध उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 के आधार पर किए जाने वाले आक्षेप से उन्मुक्त होंगे। (पैरा 6, 11)

हरियाण सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1972 की धारा 3(एफ), 3(एल) तथा 4 के उपबन्धों को देखने से दो या तीन पहलू पूर्णतया स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाते हैं। प्रथमतः इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि अधिनियम के प्रयोजनों के लिए कुटम्ब की संकल्पना को कृत्रिम रूप से परिभाषित किया गया है जिससे कि पति, पत्नी और उनकी अप्राप्तवय संतानें अभिप्रेत हैं तथा इससे प्राप्तवय पुत्रों और अविवाहित पुत्रियों को अपवर्जित किया गया है। दूसरे, धारा 4(1) के अधीन कुटुम्ब की प्रमुख इकाई पांच सदस्यों तक अर्थात् पति, पत्नी और तीन तक अप्राप्तवय संतानों तक परिसीमित है जिनके प्रति निर्देश से अनुज्ञेय क्षेत्र विहित किया गया है किन्तु धारा 4(2) के अधीन यह कथित किया गया है कि अनुज्ञेय क्षेत्र कुटुम्ब के प्रत्येक अतिरिक्त सदस्य के लिए, उदाहरण के लिए चौथी या पांचवीं अप्राप्तवय संतान के लिए प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र के 1/5 तक बढ़ जाएगा किन्तु यह बात परन्तुक में विहित अधिकतम सीमा के अध्यधीन होगी अर्थात् अनुज्ञेय क्षेत्र कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र के दोगुना से अधिक नहीं होगा। तीसरे, प्रत्येक पृथक् इकाई अर्थात् अपने माता-पिता के साथ रहने वाले प्रत्येक वयस्क पुत्र की बाबत अनुज्ञेय क्षेत्र धारा 4(3) के अधीन कुटुम्ब की प्रथम इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र तक बढ़ जाएगा परन्तु यह कि जहां पर वयस्क पुत्र के स्वामित्वाधीन भी कोई भूमि हो वह अनुज्ञेय क्षेत्र की संगणना के लिए लेखे में ली जाएगी। दूसरे शब्दों में, जिन मामलों में कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के स्वामित्वाधीन कुछ भूमि है, और कुटुम्ब के साथ रहने वाले वयस्क पुत्र के

स्वामित्वाधीन भी अपनी भूमि है वहां कुटुम्ब के लिए अनुज्ञेय क्षेत्र दोनों जोतों को धारा 4(3) के अधीन एक साथ मिलाने के पश्चात् 108 एकड़ होगा और कुटुम्ब के लिए क्षेत्र में किसी वृद्धि का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होगा किन्तु जिन मामलों में पृथक् इकाई (वयस्क पुत्र) के स्वामित्वाधीन अपनी भूमि है और वह उस भूमि को धारण किए हुए हैं किन्तु वह कुटुम्ब के साथ रह रहा है वहां प्रमुख इकाई की जोतों में दो यूनटों तक वृद्धि हो जाती है अर्थात् कुटुम्ब 108 एकड़ भूमि रखने का हकदार होगा और शेष भूमि केवल इसलिए अधिशेष हो जाएगी कि वयस्क पुत्र कुटुम्ब के साथ रह रहा है, किन्तु यदि अविवाहित पुत्री या पुत्रियां कुटुम्ब के साथ रह रही हैं या यदि वयस्क पुत्र कुटुम्ब से अलग रह रहा है तो ऐसी कोई वृद्धि नहीं होगी। हरियाणा राज्य की ओर से कुटुम्ब की कृत्रिम परिभाषा और अधिकतम सीमा नियत करने के लिए दोहरा मानदण्ड अपनाए जाने के औचित्य में न्यायालय के समक्ष पर्याप्त सामग्री पेश की गई है जो कि अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण का खण्डन करती है। किसी व्यष्टि के बजाय कुटुम्ब को इकाई मानना इसलिए आवश्यक समझा गया था कि उससे असद्भाविक विभाजन और अन्तरण करके विधि के अपवंचन के क्षेत्र को कम किया जा सकेगा क्योंकि ऐसे संव्यवहार प्रायः कुटुम्ब के सदस्यों के पक्ष में ही किए जाते हैं और यह कि सामान्य तौर पर हमारे देश में ग्रामीण कृषि व्यवस्था में कुटुम्ब प्रमुख इकाई होता है और समस्त भूमि कुटुम्ब की एक ही जोत होती है और इसलिए अधिकतम सीमा भूमि पर व्यक्तिगत रूप से कृषि करने की कुटुम्ब की क्षमता से सम्बन्धित होनी चाहिए। इन सब पहलुओं को ध्यान में रखते हुए कुटुम्ब की संकल्पना को कृत्रिम रूप से परिभाषित किया गया था और अधिकतम सीमा नियत करने के लिए दोहरा मानदण्ड—एक प्रमुख इकाई के लिए और दूसरा कुटुम्ब के साथ रहने वाले वयस्क पुत्र के लिए अपनाया गया था। वस्तुतः धारा 4(3) की तरह के उपबन्ध का, जिसमें उस दशा में किसी कुटुम्ब के अनुज्ञेय क्षेत्र में वृद्धि करने का उपबन्ध किया गया है जब कि वयस्क पुत्रों के स्वामित्वाधीन कोई अपनी भूमियां न हों और वे कोई अपनी भूमियां धारित न करते हों अपितु वे कुटुम्ब के साथ रह रहे हों, एक गुण यह है कि इससे प्रत्येक कुटुम्ब की दशा में चाहे उसे कोई भी स्वीय-विधि लागू होती हो, ऐसी वृद्धि सुनिश्चित की गई है तथा स्वीय विधि की विभिन्न पद्धतियों से शासित होने वाले वयस्क पुत्रों के बीच कोई प्रभेद नहीं किया गया है। जहां तक कुटुम्ब से पृथक् रहने वाले अवयस्क पुत्र का सम्बन्ध है, उसे ठीक ही एक पृथक् इकाई माना गया है जिसे अधिनियम की धारा 9 के अधीन अपनी जोत की बाबत एक पृथक्

1980(5) eILR(PAT) SC 171

घोषणा फाइल करनी होगी और चूंकि वह पृथक् रह रहा है इसलिए वह कुटुम्ब की भूमि को निजी रूप से जोतने में कुटुम्ब की क्षमता में कोई योगदान नहीं करेगा इसलिए कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र में वृद्धि करने के लिए कोई औचित्य नहीं है। किसी अधिनियमिति को, विशेष रूप से ऐसी अधिनियमिति को जो कि कृषि सुधार के संबंध में हो और जिसे धनी और निर्धनों के बीच समता लाने या उनके बीच असमता को कम करने के स्पष्ट प्रयोजन के लिए अधिनियमित किया हो, केवल इस कारण से कि उसमें उस बाबत कोई उपबन्ध नहीं किया गया है जिसे कि एक आपवादिक मामला या बहुत कम घटित होने वाली आकस्मिकता माना गया हो, इस आधार पर अभिखण्डित करना सम्भव नहीं होता है कि उससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है। राज्य सरकार की ओर से कुटुम्ब की कृत्रिम परिभाषा अपनाने और अधिकतम सीमा नियत करने में दोहरा मानदण्ड अपनाने के लिए औचित्य के तौर पर पेश की गई सामग्री इन उपबन्धों पर अनुच्छेद 14 के आधार पर किए गए आक्षेप का खण्डन करने के लिए पर्याप्त है। (पैरा 8, 11)

अधिनियम की धारा 9 में भूमि के चयन के बारे में घोषणा करने का अधिकार पति को दिया गया है। किन्तु इस दलील में कोई सार नहीं है कि चूंकि घोषणा करने का अधिकार पति को दिया गया है और साथ ही अनुज्ञेय क्षेत्र के भीतर उन भूमियों के चयन का अधिकार भी उसे दिया गया है जो कि वह रखना चाहता है, इसलिए चयन करते समय पति अपनी पत्नी की भूमि को अधिशेष भूमि के रूप में दे सकता है और यह बात पत्नी के विरुद्ध विभेदकारी है जिसे कि अधिशेष घोषित की गई अपनी भूमि से वंचित किया जा सकता है। प्रथमतः उस अनुज्ञेय क्षेत्र का चयन जो कि वह रखना चाहता है, लामूली तौर पर इस बात को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा कि कुटुम्ब के पास सर्वोत्कृष्ट तरह की भूमि रहे, चाहे वह पति की हो या पत्नी की हो या भले ही अवयस्क संतानों की हो न कि इस बात को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा कि किस की भूमि का त्याग किया जाना चाहिए। किन्तु मामले के इस पहलू के अलावा, ठीक ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए ही धारा 11(2) अधिनियमित की गई है जिसमें यह उपबन्ध किया गया है कि कुटुम्ब के अनुज्ञेय क्षेत्र के रूप में तथा पृथक् इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र के रूप में इस प्रकार रखी गई भूमि पर कुटुम्ब तथा साथ ही पृथक् इकाई के सदस्यों का उसी अनुपात में स्वामित्व होगा या वह उसी अनुपात में धारित की जाएगी जिसमें कि अनुज्ञेय क्षेत्र के चयन के पूर्व भूमि पर उनका स्वामित्व था या

भूमि उनके द्वारा धारित थी। दूसरे शब्दों में, यदि मात्र जिद्द के कारण ही पति को उस भूमि के रूप में जो कि वह अनुज्ञेय क्षेत्र के तौर पर अपने पास रखना चाहता है अपनी ही भूमि का चयन करना हो और वह पत्नी भूमि को अधिशेष भूमि के रूप में दे दे तो ऐसा वह अपने जोखिम पर ही करेगा क्योंकि अनुज्ञेय क्षेत्र के रूप में इस प्रकार रखी गई भूमि में उसका तथा उसकी पत्नी का उसी अनुपात में हिस्सा होगा जिसमें कि अनुज्ञेय क्षेत्र के चयन के पूर्व उनकी भूमि पर उनका स्वामित्व था या उन्होंने भूमि धारित की हुई थी। अतः अधिनियम की धारा 9(4)(सी) के अधीन चयन के अधिकार को पति को दे दिए जाने से पत्नी के प्रति किसी प्रकार के विभेद का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। धारा 8 को भी विभेद के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है। अतः अनुच्छेद 14 के अधीन पूर्वोक्त उपबन्धों को दी गई चुनौती अवश्य ही विफल होगी। (पैरा 12, 13)

अपील का अधिकार कानून द्वारा सृजित किया जाता है और इस बात के लिए कोई कारण नहीं है कि यह अधिकार देते समय विधानमण्डल ऐसे अधिकार के प्रयोग के लिए शर्तें अधिरोपित क्यों नहीं कर सकता है, बशर्ते कि शर्तें इतनी दुर्भर न हों कि वे अनुचित निर्बन्धन की कोटि में आती हों जो कि अधिकार को लगभग भ्रामक ही बना दें। अधिनियम की धारा 18 पर इस आधार पर आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि उसके द्वारा अपील के अधिकार को निर्बन्धित किया गया है जिसके लिए कई कारण हैं। प्रथमतः, शर्त अधिरोपित करने का उद्देश्य स्पष्ट रूप से उन निरर्थक अपीलों और पुनरीक्षणों को रोकना है जो कि अधिकतम सीमा विषयक नीति के क्रियान्वयन में बाधा डालती हों, दूसरे, उपधारा (8) और (9) को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि नकद निक्षेप या बैंक गारण्टी किसी आहरण के तौर पर नहीं है अपितु उस व्यक्ति से अन्तःकालीन लाभ प्राप्त करने के लिए है जिसके बारे में अन्ततः यह पाया जाए कि भूमि पर उसका विधिविरुद्ध कब्जा था, तीसरे निक्षेप या गारण्टी का भूमि जोत कर से संबंध स्थापित किया गया है जो कि हरियाणा राज्य में 8 रुपये प्रति एकड़ वार्षिक की मामूली सी रकम के लगभग ही रहता है, चौथे, किया जाने वाला निक्षेप या दी जाने वाली बैंक गारण्टी विवादास्पद क्षेत्र अर्थात् उस क्षेत्र या उसके भाग की बाबत जिसे कि अपीलार्थी या पिटीशनर के पास अनुज्ञेय क्षेत्र छोड़ने के पश्चात् अधिशेष घोषित किया जाए, संदेय भूमि कर तक ही परिसीमित है। इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से संदेय वार्षिक भूमि कर की मामूली सी रकम को ध्यान में रखते हुए, अपील। पुनरीक्षण प्राधिकारी को शर्त में ढील देने या

1980(5) BLR(PAT) SC 171

उसे अधित्यक्त करने के लिए विवेकाधिकार प्रदत्त करते हुए किसी उपबन्ध के अभाव में भी अपील/पुनरीक्षण के अधिकार पर लगाया गया नियंत्रण दुर्भर या अनुचित नहीं माना जा सकता। अतः धारा 18(7) को दी गई चुनौती विफल होगी। (पैरा 20)

यह दलील कि अधिकतम सीमा का प्रभावशील अधिरोपण नियम 5(1) और 5(2) द्वारा किया गया था न कि अधिनियम की धारा 4 द्वारा क्योंकि अनुज्ञेय क्षेत्र के अवधारण के लिए किए जाने वाले मूल्यांकन के आधार का उपबन्ध नियमों द्वारा किया गया है न कि धारा द्वारा और चूंकि अनुज्ञेय क्षेत्र के विस्तार का नियतन अनिवार्यतः एक विधायी कृत्य है इसलिए उसका कार्यपालिका को प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता था और यह बात अनिवार्य विधायी कृत्य के प्रत्यायोजन का एक स्पष्ट दृष्टान्त है और इसलिए अधिनियमिति अभिखण्डनीय है, स्वीकार नहीं की जा सकती। अनुज्ञेय क्षेत्र के विस्तार का नियतन वस्तुतः धारा 4(1) द्वारा ही किया गया है क्योंकि उक्त उपबन्ध में भूमि को तीन प्रवर्गों में विभाजित करने के अलावा इन तीन प्रवर्गों में से प्रत्येक की बाबत अनुज्ञेय क्षेत्र का विस्तार विहित और नियत किया गया है और वह विस्तार प्रत्येक प्रवर्ग के सामने उल्लिखित किया गया है तथा अनुज्ञेय क्षेत्र के अवधारण के लिए किए जाने वाले मूल्यांकन का आधार मात्र ही नियमों द्वारा विहित करने के लिए छोड़ा गया है। वे तीन प्रवर्ग जिनमें कि धारा 4(1) में अनुज्ञेय क्षेत्र के अवधारण के लिए भूमि को विभाजित किया गया है एक दूसरे को अपवर्जित करते हैं और मामूली तौर पर यदि कोई भी भूधारक यह सिद्ध करने में समर्थ हो कि उसके द्वारा धारित भूमि अनन्यतः किसी एक या दूसरे प्रवर्ग में आती है तो उसके अनुज्ञेय क्षेत्र का अवधारण सीधे ही प्रत्येक प्रवर्ग के सामने उस धारा में विनिर्दिष्ट विस्तार द्वारा अवधारित किया जाएगा और जब किसी भी भूधारक के पास एक से अधिक प्रवर्ग की भूमि हो तभी उसके अनुज्ञेय क्षेत्र का अवधारण नियम 5(1) और 5(2) के साथ पठित धारा 4(4) में विहित रीति से किए जाने वाले मूल्यांकन के आधार पर किया जाना होगा। यह बात नियम 5(1) के इन प्रारम्भिक शब्दों से स्पष्ट हो जाती है कि 'किसी व्यक्ति द्वारा धारित भूमि का मूल्यांकन विभिन्न प्रवर्गों को निम्नलिखित सूत्र के अनुसार 'सी' प्रवर्ग की भूमि में संपरिवर्तित करके किया जाएगा।' दूसरे शब्दों में नियम 5(1) और 5(2) केवल तभी लागू होते हैं जब कि किसी भूधारक के पास विभिन्न प्रवर्गों की भूमियां हों। इसके अलावा इस बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता है कि विहित रीति दोनों ही नियमों अर्थात्

1980(5) eILR(PAT) SC 171

नियम 5(1) और 5(2) में देखी जा सकती है न कि केवल किसी एक या दूसरे नियम में, किन्तु यह स्पष्ट है कि दोनों नियमों में भिन्न विषय की बाबत उपबन्ध किया गया और वे भिन्न क्षेत्रों में प्रवृत्त होते हैं। वस्तुतः नियम 5(2)(ए) के अधीन दिए गए प्रथम दृष्टान्त में गणितीय सूत्र लागू करते समय नियम 5(1) उल्लिखित परस्पर सम्बन्ध को ध्यान में रखा गया है और इस बात का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है कि नियम 5(2)(ए) के प्रवर्तन से उससे विपरीत परिणाम निकलते हैं जो नियम 5(1) में अधिकथित हैं। इसके अलावा यदि नियम 5(2)(ए) के अधीन दिए गए प्रथम दृष्टान्त का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट होगा कि नियम 5(2)(ए) के अधिनियम की धारा 4(1) की परिधि से बाहर होने जैसी कोई बात नहीं है और किसी व्यक्ति के अनुज्ञेय क्षेत्र के 21.8 हेक्टेयर से घटकर 13.88 हेक्टेयर हो जाने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है। अतः हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज रूल्स, 1973 के नियम 5(2) को दी गई चुनौतियों में से किसी में भी कोई सार नहीं है। (पैरा 15, 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1979]	[1979] 1 उम० नि० प० 1326=[1978] 3 एस० सी० आर० 293 : **मैसर्स प्राग आइस एण्ड आयल मिल्स और एक अन्य बनाम भारत संघ** (M/s. Prag Ice and Oil Mills and Another *v.* The Union of India);	3
[1978]	[1978] 1 उम० नि० प० 1103= ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 915 : **दत्तात्रेय गोविन्द महाजन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य** (Dattatray Govind Mahajan and Others *v.* State of Maharashtra and Others);	2
[1977]	ए० आई० आर० 1977 पंजाब-हरियाणा 221 : **जसवंत कुमार का मामला** (In re. Jaswant Kumar);	1

[1975] ए० आई० आर० 1975 पंजाब-हरियाणा 353 :
सरोज कुमारी का मामला
(In re. Saroj Kumari); 2, 3

[1975] [1975] 2 उम० नि० प० 951=ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 12 :
अनन्त मिल्स लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य
(Anant Mills Limited *v.* State of Gujarat); 20

[1974] ए० आई० आर० 1974 पंजाब-हरियाणा 162 :
सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य
(Sucha Singh *v.* State of Punjab); 2

[1973] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 1 :
पूज्य श्री केशवानन्द भारती श्रीपदगालवरु और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य
(His Holiness Kesavananda Bharti Shripadgalvaru and Others *v.* State of Kerala and Others); 6

[1972] [1972] 3 उम० नि० प० 340=[1973] 1 एस० सी० आर० 326 :
कुंजू कुट्टी साहिब बनाम केरल राज्य और एक अन्य
(Kunju Kutty Sahib *v.* State of Kerala and Another); 21

[1964] [1964] 7 एस० सी० आर० 82 :
ए० पी० कृष्णासामी नायडू बनाम मद्रास राज्य
(A. P. Krishnasami Naidu *v.* State of Madras); 10

[1962]	ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 252 : **बिहार राज्य** बनाम **कामेश्वर सिंह** (State of Bihar *v.* Kameshwar Singh);	6
[1962]	[1962] सप्लीमेण्ट 1 एस० सी० आर० 829 : **करीमबिल कुन्हीकोमन** बनाम **केरल राज्य** (Karimbil Kunhikoman *v.* State of Kerala);	10
[1952]	[1952] 3 एस० सी० आर० 89 : **श्री शंकरी प्रसाद सिंह देव** बनाम **भारत संघ और बिहार राज्य** (Shri Shankri Prasad Singh Deo *v.* Union of India and State of Bihar).	6

सिविल अपीली अधिकारिता : 1977 की सिविल अपील सं० 1361.

1976 के रिट पिटीशन सं० 4766 में चण्डीगढ़ स्थित पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय के तारीख 17 मार्च, 1977 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील ।

तथा

सिविल अपील सं० 2785-2786, 2935-38, 2893, 2823-25, 2235, 1348, 1362-74, 1525-27, 2022-23, 2144, 2234, 2707-2710, 2831, 2723-2724, 2423-26, 2805-09/77, 976, 843-844, 1263, 566-67, 1010, 1014, 1076' 1898-1901, 1902-16, 2043-47, 2064-72, 1674-76, 120-27, 1079, 291, 318-19, 132, 546, 547, 671, 941-45, 946, 949, 1610, 1876, 1878-1895, 1813, 1829, 176-77, 139, 276, 576, 581-83, 1645-48, 1554, 992-998, 1789-1803, 1831-33, 2071-74, 2162, 2216, 2233, 2234, 2295, 2436-39/78 तथा 2725/77.

तथा

विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) सं० 3498-99, 4270, 4419, 4420, 4455, 4735, 5205, 5238/77, 63, 64, 99, 352, 353, 442, 443, 454, 455, 608, 635, 622, 623, 778-79, 1819, 1303, 1312, 1414, 1404, 1573, 1576-79, 1715, 1842, 1849-50, 1959, 2370, 2013-14, 2414, 2462, 2491-92, 3102-03, 3225-26, 3569, 3413, 3476, 1423, 4072, 3519, 3521, 3541-44, 3715, 3746, 3819, 3857-58, 3891-96, 4052, 4539, 4500-11, *4655-67, 4617, 4815-17, 4818, 4830, 4831-34, 4836-37, 4849, 4864-76, 4966, 4972, *4973-81, 4983ए-5002, 5004, 5030, 4850-51, 4863, 5008-22, 5024, 5025, 5049, 5126-29, 5174-84, 5272, 5211, 5250-57, 5271, 5290-93, 5340-46, 5385, 5402-08, 5413-15, 5454, 5460-72, 5516-19, 5628, 5625, 5634-36, 5637-44, 5646-47, 5786-87, 5788-90, 5869-72, 5873, 5907-24, 5939-40, 5970-74, *5975-84, 6002, 6120, 6126-33, 6158-62, 6208, 6209, 6240, 6216-18, 6246-47, *5975-84, 6002, 6120, 6126-33, 6158-62, 6208, 6239, 6240, 6216-18, 6246-47, 6361-62, 6395, 6421, 6449-53, 6582, 6645-49, 6677-78, 6654, 6656, 6669/78 और 208-214 तथा 215/80, (*4662/78, 4974/78 और 5975-5977/78 वापस ले लिए गए)

तथा

1978 के रिट पिटीशन सं० 4306, 4312, 4377 और 4507.

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री एम० एन० फड़के, निशात सिंह, बी० पी० महेश्वरी और सुरेश सेठी
अपीलार्थियों/पिटीशनरों की ओर से (सिविल अपील 2785-86, 2935-38, 2234-35, 2707-10, 2831, 2805-9/77, 120-122, 318-19,	सर्वश्री वी० एम० तारकुंडे, नवनीत लाल और नौरंग सिंह

671, 176, 276, 2071-84/78, 177, 2216/78, विशेष इजाजत पिटीशन 2491-92/78, 3541-44, 5126-29, 6216-18, 6421, 5308/78 और रिट पिटीशन 4377 तथा सिविल अपील 2893/97 में)

अपीलार्थियों/पिटीशनरों की ओर से — श्री के० के० मोहन तथा श्रीमती गीतांजली मोहन

(सिविल अपील 2823-25, 1525-27, 2022-23/77, 2069-70/78, 1813/78, 2144, 2423-26/77, 1263, 56-57, 1010-14, 1898-1901, 1902-16, 2064-68, 1392, 291, 546-47, 941-45, 946-49, 139, 576, 1789-1803, 1828, 2436-39/78, विशेष इजाजत पिटीशन 442, 443, 454, 608, 635, 778, 779, 1819, 1401, 1414, 1573, 1576-79, 1849-50, 2013-14, 2414, 2462, 3102-3, 3225-26, 3369, 3746, 5272, 3819, 3857-58, 3891-96, 4052, 4500-11, 4655-67, 4983ए-5002, 5174-84, 5460-72, 5907-24, 5970-74, 6126-33, 6645-49, 6677-78/78, 4270, 4455, 4735, 5205 और 5238/77 तथा 5030/78 में)

1980(5) eILR(PAT) SC 171

अपीलार्थी की ओर से (सिविल अपील 1348, 1362-74/77) और **पिटीशनरों की** ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 4539 तथा 562/78 में)	सर्वश्री वी० एम० तारकुण्डे, ओ० पी० मल्होत्रा, पी० आर० मृदुल और एच० के० पुरी
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 2723-24, 77 तथा 2725/77 में)	श्री एन० सी० सीकरी
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 976, 1076/78 में) **और पिटीशनरों की ओर से** (विशेष इजाजत पिटीशन 622, 623, 1715/78 और रिट पिटीशन सं० 4312 में)	श्रीमती लक्ष्मी अरविन्द
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 843-44, 546/78) **और पिटीशनरों की ओर से** (विशेष इजाजत पिटीशन 4815-17, 5008-22, 5024, 5025, 5290-93, 5340-46, 5869-72/78, 4419-20/77 में)	श्री एस० के० मेहता
अपीलार्थियों की ओर से सिविल अपील 2043-47, 1831-34/78) **और पिटीशनरों की ओर से** (विशेष इजाजत पिटीशन	सर्वश्री एस० एम० अशरी और एस० एस० शर्मा

1980(5) eILR(PAT) SC 171

4617, 4830, 5454, 5628, 6246-47/78 तथा 4863/78 में)	
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 1674-76, 1554/78) और पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 5873/78, 5646-47/78 में)	सर्वश्री आर० एस० मित्तल और ए० मिनोचा
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 1079/78 में)	श्री एम० बी० लाल
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 132/79) और पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 63-65, 99, 352, 353, 455/78, 208-14/80, 208-245/80 में)	सर्वश्री बी० पी० महेश्वरी और एच० एस० ग्रेवाल
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 1650, 1878-89/78, 1890-95/78) और पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 4831-34, 4836, 4837, 4864, 76, 4966, 5250-57, 5402-8, 5634-44, 5646-47, 5975-5984, 6158-62, 6449-6453, 6654/78, 5271/78 में)	श्री सर्व मित्र

अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 1876, 1645-48/78) और पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 3519, 4972, 5004-5007, 6120/78 में तथा रिट पिटीशन 4507/78 में)	श्री एस० के० सब्बरवाल
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 581-83/78) और पिटीशनरों की ओर से [विशेष इजाजत पिटीशन (सिविल) 1842/78, 3521, 4849, 4850-51/78 में]	श्री एस० सी० पटेल
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 992-98/78 में)	श्री मनोज कुमार
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 2162/78) और पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 4973-81, 6361-62, 6395, 5413-5415/78 में)	श्री एस० के० ढींगरा
अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 2233, 2234/78) और पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 5309-10/78 में)	श्री डी० गोवर्धन

अपीलार्थियों की ओर से (सिविल अपील 2294/78 में)	श्री रमेश चन्द
पिटीशनरों की ओर से (रिट पिटीशन 4306/77 और विशेष इजाजत पिटीशन 3498-99/77 में)	सर्वश्री आई० एस० रत्ता और विमल दवे तथा कुमारी के० मेहता
पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 1303/78, 2370, 3413, 3476, 6002, 1423, 4072/78 और 1312/78 में)	श्री आर० राणा
पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 1959/78 5939-40/78 में)	श्री हरबंस सिंह
पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 3715/78 में)	श्री रामेश्वर नाथ
पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 5049/78 में)	श्री आर० सी० कोहली
पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 5211/78 में)	श्री एस० आर० श्रीवास्तव
पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 5385/78 में)	श्री एस० के० बग्गा
पिटीशनरों की ओर से (विशेष इजाजत पिटीशन 5516-19, 5786-90, 6208, 6656, 6669/78, 4818, 7239/78 में)	श्री जे० डी० जैन

हाजिर होने वाले प्रत्यर्थियों की ओर से	श्री के० के० वेणुगोपाल, अपर महासॉलिसिटर, श्री बी० दत्ता, श्री एम० एन० श्रॉफ, श्रीमती हेमंतिका वाही (4306) श्री अनिप सचदे
(1348 तथा1362-74/77 में)	कुमारी ए० सुभाषिणी।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० डी० तुलज़ापुरकर ने दिया।

न्यायाधिपति तुलज़ापुरकर—

जसवंत कुमार वाले मामले[1] में पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय के विरुद्ध विशेष इजाज़त लेकर की गई इन अपीलों में हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज ऐक्ट, 1972 (1972 का 26) के कुछ उपबन्धों की शक्तिमता को चुनौती दी गई है तथा अपीलार्थियों के अनुसार इनमें से कुछ उपबन्ध आधारिक हैं और वे सम्पूर्ण अधिनियम में ही व्याप्त हैं इसलिए सम्पूर्ण अधिनियम ही अभिखण्डनीय है।

2. अधिनियम (1972 का 26) को राष्ट्रपति की अनुमति 22-12-1972 को प्राप्त हुई थी और वह राजपत्र में 25 दिसम्बर, 1972 को प्रकाशित किया गया था। धारा 2 में यह अपेक्षित घोषणा अन्तर्विष्ट थी और अब भी अन्तर्विष्ट है कि अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 39 के खण्ड (ख) और (ग) में विनिर्दिष्ट सिद्धान्तों को सुनिश्चित करने की राज्य की नीति को प्रभावी करने के लिए अधिनियमित किया गया है। अधिनियम संविधान की नवम् अनुसूची में 7 सितम्बर, 1974 को सम्मिलित कर लिया गया था (देखिए मद सं० 72) और तद्द्वारा उसे संविधान के अनुच्छेद 31-ख का संरक्षण प्राप्त हो गया था; तथापि 9 सितम्बर, 1974 को **सरोज कुमारी वाले मामले**[2] में पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय की एक खण्ड न्यायपीठ ने अधिनियम के ऐसे सम्मिलित किए जाने से अनभिज्ञ होने के कारण अधिनियम के कुछ उपबन्धों को इस आधार पर अभिखण्डित कर दिया था कि उन

[1] ए० आई० आर० 1977 पंजाब-हरियाणा 221.
[2] ए० आई० आर० 1975 पंजाब-हरियाणा 353.

उपबन्धों से संविधान के भाग 3 द्वारा गारन्टीकृत अधिकारों का अतिक्रमण होता था। खण्ड न्यायपीठ ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 31-क द्वारा उन उपबन्धों की व्यावृत्ति नहीं होती थी क्योंकि उन उपबन्धों के बारे में जो कि मुख्यतः कौटुम्बिक इकाई के सम्बन्ध में थे, यह नहीं कहा जा सकता था कि वे संविधान के अनुच्छेद 39(ख) और (ग) को अग्रसर करने के लिए हैं। ऐसा अभिनिर्धारित करते समय खण्ड न्यायपीठ ने **सुच्चा सिंह के मामले**[1] में उस न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलम्बन किया था जिसमें पंजाब लैण्ड रिफार्म्स ऐक्ट, 1973 के अधिनियम 10 के ऐसे ही उपबन्धों को अभिखण्डित कर दिया गया था। अब इस न्यायालय ने **दत्तात्रेय गोविन्द महाजन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[2] में **सुच्चा सिंह के मामले**[1] में पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय को उलट दिया है। इस न्यायालय ने यह मत अपनाया है कि पंजाब लैण्ड रिफार्म्स ऐक्ट के उपबन्धों की संविधान के अनुच्छेद 31-क और 31-ख दोनों द्वारा ही व्यावृत्ति हो जाती है। इस प्रकार वह आधार जिस पर कि हरियाणा अधिनियम (1972 का 26) के कुछ उपबन्धों को अभिखण्डित करने के लिए **सरोज कुमारी वाले मामले**[3] का विनिश्चय आधारित था, समाप्त हो चुका है।

3. तथापि **सरोज कुमारी के**[3] विनिश्चय के पश्चात् अधिनियम (1972 का 26) और उसकी धारा 31 के अधीन बनाए गए नियमों में व्यापक संशोधन हुए हैं; सर्वप्रथम अधिनियम 1976 के हरियाणा अधिनियम 17 द्वारा संशोधित किया गया था और वह संशोधन अधिनियम भी नवम् अनुसूची में सम्मिलित कर लिया गया था। (देखिए मद सं० 137) उस अधिनियम में 1976 के हरियाणा अधिनियम 40 और 47, 1977 के 14 और 1978 के 18 द्वारा आगे और संशोधन किए गए थे किन्तु अन्तिम चार संशोधन अधिनियमों को नवम् अनुसूची में सम्मिलित नहीं किया है। अतः यह स्पष्ट है कि 1976 के संशोधन अधिनियम 17 द्वारा मूल अधिनियम में किए गए संशोधनों को अनुच्छेद 31-ख का संरक्षण प्राप्त होगा किन्तु, अन्तिम चार अधिनियमों द्वारा किए गए संशोधनों को ऐसा संरक्षण प्राप्त नहीं होगा। इसके अलावा, यद्यपि 1976 के अधिनियम 17 द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम को अनुच्छेद 31-ख का संरक्षण प्राप्त होगा तथापि हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज रूल्स, 1973 के, जैसे कि वे मूलतः बनाए किए गए थे, या

---

[1] ए० आई० आर० 1974 पंजाब-हरियाणा 162.

[2] [1978] 1 उम० नि० प० 1103=ए० आई० आर० 1977 एस० सी० 915.

[3] ए० आई० आर० 1975 पंजाब-हरियाणा 353.

1980(5) eILR(PAT) SC 171

तत्पश्चात् संशोधित किए गए थे, अधीनस्थ विधान होने के कारण और नवम् अनुसूची में विनिर्दिष्ट न किए जाने के कारण उन्हें ऐसा संरक्षण प्राप्त नहीं हो सकता है। (देखिए **पराग आइस एण्ड आयल मिल्स वाला मामला**[1])।

4. मूल अधिनियम (1972 का 26) के उपरोक्त रूप से संशोधित होने के पश्चात् पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय में अधिनियम के कुछ उपबन्धों की शक्तिमत्ता को चुनौती देते हुए कई रिट पिटीशन फाइल किए गए थे। मूल अधिनियम और साथ ही 1976 के संशोधन अधिनियम 17 के नवम् अनुसूची में सम्मिलित कर दिए जाने के कारण चुनौती इस आधार पर दी गई थी कि वे उपबन्ध अस्पष्ट, अनिश्चित, संदिग्ध और परस्पर असंगत थे और इसलिए उन्हें अभिखण्डित किया जाना चाहिए तथा न तो संविधान के अनुच्छेद 31-क से और न ही अनुच्छेद 31-ख से ऐसे उपबन्धों की व्यावृत्ति हो सकती है। उच्च न्यायालय ने यह अभिवचन इस आधार पर नामंजूर कर दिया था, और हमारे विचार में ठीक ही था, कि किसी विधानमंण्डल द्वारा अधिनियमित ऐसा विधान जो उसकी सक्षमता के भीतर हो और जिससे संविधान के भाग 3 द्वारा गारंटीकृत किसी मूल अधिकार का उल्लंघन न होता हो तथा जिससे संविधान के किसी अन्य उपबन्ध का उल्लंघन न होता हो, न तो इस आधार पर कि उससे उपबन्ध अस्पष्ट थे और न ही इस आधार पर कि वे अनिश्चित या संदिग्ध या परस्पर असंगत थे, अधिकारातीत घोषित किया जा सकता है। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि हमारे संविधान में कोई सम्यक् प्रक्रिया विषयक (ड्यू प्रोसेस) खण्ड नहीं है, जैसा कि अमरीका के संविधान में है और इसलिए भारतीय न्यायालय किसी कानून को इस आधार पर अविधिमान्य घोषित नहीं कर सकते हैं कि उस में कोई अस्पष्ट, अनिश्चित या संदिग्ध या परस्पर असंगत उपबन्ध अन्तर्विष्ट हैं और प्रत्येक न्यायिक स्थिति में भारतीय न्यायालय का यह कर्तव्य और कार्य होता है कि वह विधि की भाषा की तथा उस संदर्भ की जिसमें कि वह कानून बनाया गया है, जांच पड़ताल विधानमण्डल के आशय का पता चलाने के लिए करे और विधि का निर्वचन विधायी आशय को प्रभावशील करने के लिए न कि उसे विफल करने के लिए करे तथा इस निमित्त वह सदैव ही निर्वचन के सुज्ञात सिद्धान्तों की सहायता ले सकता है और जहां पर किसी कानून के उपबन्ध परस्पर असंगत प्रतीत हों वहां भी कानून के उपबन्धों को उचित अर्थ देने के लिए न्यायालय का मार्गदर्शन करने के लिए निर्वचन के कई सुज्ञात सिद्धान्त हैं, जैसा कि समन्वयपूर्ण अर्थान्वयन का सिद्धान्त, यह सिद्धान्त कि

[1] [1979] 1 उम० नि० प० 1326=[1978] 3 एस० सी० आर० 293.

1980(6) eILR(PAT) SC 171

विशेष बात सामान्य पर अभिभावी होगी, आदि। मुख्य अभिवचन का खण्डन करने के पश्चात् न्यायालय ने उन सम्बद्ध उपबन्धों की जांच की थी जिनके बारे में यह कहा गया था कि वे अस्पष्ट, अनिश्चित और परस्पर असंगत हैं तथा न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला था कि कुछ उपबन्ध जिनके बारे में यह कहा गया है कि वे अस्पष्ट हैं, इतने अस्पष्ट नहीं थे, अपितु उनका एक निश्चित अर्थ और अभिप्राय था तथा प्रकट रूप से असंगत प्रतीत होने वाले उपबन्ध भी ऐसे नहीं थे जिनमें समन्वय न किया जा सके वे सभी उपबन्ध अधिनियम की सामान्य स्कीम के अनुरूप ही थे। एकमात्र उपबन्ध जिसकी बाबत न्यायालय ने अनुतोष प्राप्त किया था, धारा 20ए था जो कि अधिनियम की कार्यवाहियों में वित्त आयुक्त से भिन्न किसी अधिकारी या प्राधिकारी के समक्ष किसी विधिक व्यवसायी के उपसंजात होने को वर्जित करते थे और न्यायालय ने यह मत अपनाया था कि ऐसा उपबन्ध भारतीय विधिज्ञ परिषद अधिनियम की (जो कि अधिवक्ता अधिनियम की धारा 30 के प्रवृत्त न होने के कारण जारी बना रहा था) धारा 14 के विरुद्ध था और इसलिए अविधिमान्य था। अधिनियम की धारा 20ए को अधिकारातीत अभिनिर्धारित करने और इसलिए राज्य को उक्त उपबन्ध को प्रवृत्त न करने का निदेश देने के साथ तथा अधिनियम के अधीन प्राधिकारियों के समक्ष घोषणाएं आदि फाइल करने के मामले में कुछ निदेश देते हुए न्यायालय ने सभी रिट पिटीशन खारिज कर दिए थे। इन अपीलों में अपीलार्थियों ने अधिनियम के कुछ उपबन्धों को ऐसे आधारों पर चुनौती दी है जो कि उन आधारों से पर्याप्त रूप से भिन्न हैं जिनका उच्च न्यायालय के समक्ष तर्क दिया गया था।

5. इन अपीलों के अलावा कई रिट पिटीशन और साथ ही विशेष इजाजत के लिए पिटीशन फाइल किए गए हैं और हमारे समक्ष लाए गए हैं जिनमें कि समय-समय पर यथा संशोधित मूल अधिनियम (1972 का 26) के उपबन्धों को लगभग एक जैसे ही आधारों पर चुनौती दी गई है और उन सब का भी इस निर्णय से निपटारा हो जाएगा।

6. यह ठीक है कि चूंकि मूल अधिनियम (1972 का 26) और साथ ही 1976 का संशोधन अधिनियम 17 नवम् अनुसूची में सम्मिलित कर लिए गए हैं इसलिए अपीलार्थियों के काउन्सेल ने अनुच्छेद 31-ख की और साथ ही संविधान (34वां संशोधन) अधिनियम, 1974 और संविधान (40वां संशोधन) अधिनियम, 1976 की जिनके द्वारा मूल अधिनियम और साथ ही प्रथम संशोधन अधिनियम को नवम् अनुसूची में सम्मिलित कर लिया गया था सांविधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी है कि

1980(5) eILR(PAT) SC 171

अनुच्छेद 31-ख और इन सांविधानिक संशोधनों से संविधान के मूलभूत ढांचे और रूपरेखा का अतिक्रमण होता है। इसी प्रकार चूंकि मूल अधिनियम में उसकी धारा 2 के अधीन यह अपेक्षित घोषणा अन्तर्विष्ट है कि यह अधिनियमिति अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में समाविष्ट निर्देशात्मक सिद्धान्तों को प्रभावी करने के प्रयोजन से बनाई गई है, इसलिए अपीलार्थी के विद्वान काउन्सेल ने अनुच्छेद 31-ग की सांविधानिक विधिमान्यता को भी इस आधार पर चुनौती दी है कि उससे संविधान की मूलभूत रूपरेखा का अतिक्रमण होता है। तथापि इन पहलुओं के अलावा, इस बात का खण्डन नहीं किया जा सकता है कि यदि समय-समय पर यथा संशोधित मूल अधिनियम (1972 का 26) संविधान के अनुच्छेद 31-क के अन्तर्गत आ जाता है तो वह अनुच्छेद 14, 19 और 31 द्वारा गारंटीकृत मूल अधिकारों में से किसी से असंगति या किसी के न्यूनन के आधार पर चुनौती से उन्मुक्त होगा। अनुच्छेद 31-क की सांविधानिक विधिमान्यता की **शंकरी प्रसाद वाले मामले**[1] से ही इस न्यायालय ने निरन्तर अभिपुष्टि की है और **केशवानन्द भारती वाले मामले**[2] में भी इसकी विधिमान्यता के बारे में कोई विवाद नहीं किया गया था, किन्तु अनुच्छेद 31-ग की सांविधानिक विधिमान्यता के बारे में अनुच्छेद 31-क के प्रति निर्देश से तर्क दिया गया था। इसके अलावा संविधान में 1951 में अनुच्छेद 31-क के पुरःस्थापन के परिणामस्वरूप इस न्यायालय ने **बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह**[3] में भूमि सुधार विधियों को इस आधार पर दी गई चुनौतियों का खण्डन किया है कि उनसे अनुच्छेद 14, 19 या 31 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है। हमारे विचार में यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि 1972 का मूल अधिनियम 26 उस में किए गए संशोधनों सहित, जो कि अनिवार्य रूप से कृषि जोतों पर अधिकतम सीमा अधिरोपित करने, अधिशेष क्षेत्र के अर्जन और उसके समाज के भूमिहीन तथा दुर्बल वर्गों को वितरण के लिए आशयित है तथा सारतः तथा वस्तुतः एक ऐसा विधान है जो कि कृषि सुधार से सम्बन्धित है, स्पष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 31-क के अन्तर्गत आता है, और इसलिए उसे ऊपर उल्लिखित उन्मुक्तता प्राप्त होगी। अतः अधिनियम के कुछ विनिर्दिष्ट उपबन्धों के प्रति हमारे समक्ष दी गई चुनौतियों के रूप भिन्न-भिन्न हो जाएंगे और तदनुसार उनके सम्बन्ध में कार्यवाही की जाएगी।

---

[1] [1952] 3 एस० सी० आर० 89.

[2] [1973] 2 उम० नि० प० 159=[1973] सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 1.

[3] ए० आई० आर० 1962 एस० सी० 252.

1980(5) eILR(PAT) SC 171

7. अधिनियम के विरुद्ध किया गया मुख्य आक्षेप यह है कि उस में धारा 3(एफ) में "कुटुम्ब" की कृत्रिम परिभाषा अधिनियमित की गई है जो कि राज्य में हिन्दू विधि में ज्ञात हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब या मुस्लिम विधि के अधीन किसी कुटुम्ब की तरह प्रचलित किसी नैसर्गिक कुटुम्ब के अनुरूप नहीं है और धारा 4 में अधिकतम सीमा क्षेत्र का उपबन्ध करने के मामले में दोहरा स्तर अपनाया गया है जिसके द्वारा घोर असमानताएं होती हैं और इसलिए इन उपबन्धों से संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है। अपीलार्थियों के काउन्सेल ने यह तर्क दिया कि धारा 3(एफ) में दी गई कुटुम्ब की यह कृत्रिम परिभाषा दो अन्य परिभाषाओं के अर्थात् धारा 3(एफ) में दी गई अनुज्ञेय क्षेत्र की परिभाषा और धारा 3(क्यू) में दी गई पृथक् इकाई की परिभाषा के साथ पढ़ा जाना अपेक्षित है और यदि इस ढंग से पढ़ा जाए तो धारा 4 के साथ कुटुम्ब की कृत्रिम परिभाषा से जिसमें कि "कुटुम्ब की मुख्य इकाई" की दशा में अधिकतम सीमा क्षेत्र नियत करने के लिए दोहरा स्तर अपना कर अनुज्ञेय क्षेत्र विहित किया गया है, विभेदकारी परिणाम निकलते हैं और उनके अनुसार कुटुम्ब की परिभाषा आधारिक है और वह अधिनियम के प्रमुख उपबन्धों में, जैसे कि धारा 4(1), 4(3), 7, 8, 9 और 11(1) तथा (2) में आती है इसलिए इससे सम्पूर्ण अधिनियम ही संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करने के कारण असांविधानिक होगा। उन्होंने यह तर्क भी दिया कि ये मुख्य उपबन्ध जिनमें कि कुटुम्ब की कृत्रिम परिभाषा आती है, पृथक्करणीय नहीं है और इसलिए सम्पूर्ण अधिनियम को ही अभिखण्डित किया जाना होगा। इस दलील को समझने के लिए अधिनियम के सुसंगत उपबन्धों की जांच कर लेना आवश्यक होगा। धारा 3(एफ) में "कुटुम्ब" को इस रूप में परिभाषित किया गया है—

"3(च) "कुटुम्ब" से पति, पत्नी तथा उनकी अप्राप्तव्य संतानें या उनमें से कोई दो या अधिक अभिप्रेत हैं।

स्पष्टीकरण I—विवाहित अप्राप्तवय पुत्री संतान नहीं समझी जाएगी।"

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

* "3 (f). "family" means husband, wife and their minor children or any two or more of them.

Explanation I—A married minor daughter shall not be treated as a child."

1980(5) eILR(PAT) SC 171

स्पष्टीकरण 2 विचाराधीन मुद्दों के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं है। धारा 3(एल) में अनुज्ञेय क्षेत्र को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

*"3(एल) अनुज्ञेय क्षेत्र से धारा 4 में अनुज्ञेय क्षेत्र के रूप में विनिर्दिष्ट भूमि अभिप्रेत है।"

धारा 3(क्यू) में पृथक् इकाई को इस रूप में परिभाषित किया गया है—

**"3(ण)—पृथक् इकाई से अपने माता-पिता या उनमें से किसी एक के साथ रहने वाला प्राप्तवय पुत्र या उसकी मृत्यु की दशा में उसकी विधवा और संतानें, यदि कोई हों, अभिप्रेत हैं।

स्पष्टीकरण—प्राप्तवय पुत्र या उसकी मृत्यु की दशा में उसकी विधवा या संतानों के बारे में यह समझा जाएगा कि वे माता-पिता या उनमें से किसी एक के साथ रह रहे हैं जब तक कि वे पृथक् न हो गए हों।"

धारा 7 ही कृषि जोतों पर अधिकतम सीमा अधिरोपित करती है और उसमें यह उपबन्ध किया गया है कि किसी विधि, रूढ़ि, प्रथा या करार में तत्प्रतिकूल किसी बात के होते हुए भी कोई भी व्यक्ति भूस्वामी के रूप में या किराएदार के रूप में या कब्जे सहित अथवा अंशतः एक हैसियत और अंशतः दूसरी हैसियत में बंधकदार के रूप में नियत दिन को [जो कि धारा 3(सी) के अधीन 24-1-1971] था या उसके पश्चात् हरियाणा राज्य के भीतर अनुज्ञेय क्षेत्र से अधिक भूमि धारित करने का हकदार नहीं होगा। धारा 3(एम) में व्यक्ति को इस रूप में परिभाषित किया गया है कि इसमें अन्य बातों के साथ "कुटुम्ब" भी सम्मिलित है। धारा 7 का स्पष्टीकरण महत्वपूर्ण है जिसमें (अधिकतम सीमा के लिए) सबकी भूमि के शामिल किए जाने का उपबन्ध किया गया है और यह कथित किया गया है कि जहां कोई व्यक्ति पृथक् इकाई

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"3 (l). 'permissible area' means the extent of land specified in section 4 as the permissible area."

**"3 (q). 'separate unit' means an adult son living with his parent or either of them and in case of his death his widow and children, if any.

Explanation—The adult son or in case of his death his widow and children shall be deemed to be living with the parents or either of them unless separated."

सहित, यदि कोई हो, कुटुम्ब है तो अनुज्ञेय क्षेत्र का परिकलन करने के प्रयोजनार्थ ऐसे व्यक्ति के स्वामित्वाधीन और उसके द्वारा धारित भूमि कुटुम्ब तथा पृथक् इकाई के सदस्यों के स्वामित्वाधीन और उनके द्वारा धारित भूमि सहित विचार में ली जाएगी। अगला महत्वपूर्ण उपबन्ध धारा 4 है, जो कि अनुज्ञेय क्षेत्र के सम्बन्ध में है और विवाद्य प्रश्न के लिए उस धारा की उपधारा (1), (2) और (3) सुसंगत हैं, और ये उपबन्ध इस प्रकार हैं—

*"4(1). किसी भूस्वामी या किराएदार या कब्जे सहित अथवा अंशतः एक हैसियत या अंशतः दूसरी हैसियत में बंधकदार अथवा किसी व्यक्ति या पति, पत्नी और तीन अप्राप्तवय संतानों तक, संतानों को अन्तर्विष्ट करते हुए कुटुम्ब (जिसे इसमें इसके पश्चात् कुटुम्ब की प्रमुख इकाई कहा गया है) के सम्बन्ध में अनुज्ञेय क्षेत्र—

(क) ऐसी भूमि की बाबत जिसके लिए सिंचाई के सुनिश्चित साधन हैं और जिस पर वर्ष में कम से कम दो फसलें उगाई जा सकती हैं (जिसे इसमें इसके पश्चात् सिंचाई के सुनिश्चित साधनों वाली भूमि कहा गया है), 7.25 हेक्टेयर (=18 एकड़)।

(ख) ऐसी भूमि की बाबत जिसके लिए सिंचाई के सुनिश्चित साधन हैं, और जिस पर वर्ष में कम से कम एक फसल उगाई जा सकती है, 10.9 हेक्टेयर, (=27 एकड़)।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"4(1). The permissible area in relation to a land-owner or tenant or mortgagee with possession or partly in one capacity or partly in another, or person or family consisting of husband, wife and upto three minor children (hereinafter referred to as the primary unit of family),

(a) Land under assured irrigation capable of growing at least two crops in a year (hereinafter referred to as the land under assured irrigation, 7.25 hectares(=18 acres).

(b) Land under assured irrigation capable of growing at least one crop in a year, 10.9 hectares (=27 acres).

(ग) फलोद्यान सहित अन्य सभी प्रकार की भूमि की बाबत 21.8 हेक्टेयर (=54 एकड़) ।

(2) कुटुम्ब के प्रत्येक अतिरिक्त सदस्य के लिए अनुज्ञेय क्षेत्र कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र के 1/5 के बराबर बढ़ा दिया जाएगा ।

परन्तु यह कि अनुज्ञेय क्षेत्र कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र के दोगुना से अधिक नहीं होगा ।

(3) प्रत्येक पृथक् इकाई के लिए अनुज्ञेय क्षेत्र कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र के बराबर बढ़ा दिया जाएगा ।

परन्तु यह कि जहां पर पृथक् इकाई के स्वामित्वाधीन कोई भूमि हो वहां अनुज्ञेय क्षेत्र का परिकलन करने के लिए वह भी विचार में ली जाएगी ।"

8. उपरोक्त उपबन्धों को देखने से दो या तीन पहलू पूर्णतया स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाते हैं । प्रथमतः इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि अधिनियम के प्रयोजनों के लिए कुटुम्ब की संकल्पना को कृत्रिम रूप से परिभाषित किया गया है जिससे कि पति, पत्नी और उनकी अप्राप्तवय संतानें अभिप्रेत हैं तथा इससे प्राप्तवय पुत्रों और अविवाहित पुत्रियों को अपवर्जित किया गया है । दूसरे, धारा 4(1) के अधीन कुटुम्ब की प्रमुख इकाई पांच सदस्यों तक अर्थात् पति, पत्नी और तीन तक उनकी अप्राप्तवय संतानों तक परिसीमित है जिनके

(c) Land of all other types including land under orchard, 21.8 hectares (=54 acres);

(2) The permissible area shall be increased by one fifth of the permissible area of the primary unit of family for each additional member of family :

Provided that the premissible area shall not exceed twice the permissible area of the primary unit of family.

(3) The permissible area shall be further increased up to the permissible area of the primary unit of a family for each separate unit :

Provided that where the separatc unit also owns any land, the same shall be taken into account for calculating the permissible area."

1980(5) eILR(PAT) SC 171

प्रति निर्देश से अनुज्ञेय क्षेत्र विहित किया गया है किन्तु धारा 4(2) के अधीन यह कथित किया गया है कि अनुज्ञेय क्षेत्र कुटुम्ब के प्रत्येक अतिरिक्त सदस्य के लिए उदाहरण के लिए चौथी या पांचवी अप्राप्तवय संतान के लिए प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र के 1/5 तक बढ़ जाएगा, किन्तु यह बात परन्तुक में विहित अधिकतम सीमा के अध्यधीन होगी अर्थात् अनुज्ञेय क्षेत्र कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र के दोगुना से अधिक नहीं होगा। तीसरे, प्रत्येक पृथक् इकाई अर्थात् अपने माता-पिता के साथ रहने वाले प्रत्येक वयस्क पुत्र की बाबत अनुज्ञेय क्षेत्र धारा 4(3) के अधीन कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र तक बढ़ जाएगा परन्तु यह कि जहां पर वयस्क पुत्र के स्वामित्वाधीन भी कोई भूमि हो वह अनुज्ञेय क्षेत्र की संगणना के लिए लेखे में ली जाएगी। दूसरे शब्दों में, जिन मामलों में कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के स्वामित्वाधीन कुछ भूमि है, [उदाहरण के लिए धारा 4 के खण्ड(1)(सी) के अधीन 54 एकड़] और कुटुम्ब के साथ रहने वाले वयस्क पुत्र के स्वामित्वाधीन भी अपनी भूमि है (उदाहरण के लिए 54 एकड़) वहां कुटुम्ब के लिए अनुज्ञेय क्षेत्र दोनों जोतों को धारा 4(3) के अधीन एक साथ मिलाने के पश्चात् 108 एकड़ होगा और कुटुम्ब के लिए क्षेत्र में किसी वृद्धि का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होगा किन्तु जिन मामलों में पृथक इकाई (वयस्क) के स्वामित्वाधीन अपनी भूमि है और वह उस भूमि को धारण किए हुए है किन्तु वह कुटुम्ब के साथ रह रहा है वहां प्रमुख इकाई की जोतों में दो यूनिटों तक वृद्धि हो जाती है अर्थात् कुटुम्ब 108 एकड़ भूमि रखने का हकदार होगा और शेष भूमि केवल इसलिए अधिशेष हो जाएगी कि वयस्क पुत्र कुटुम्ब के साथ रह रहा है, किन्तु यदि अविवाहित पुत्री या पुत्रियां कुटुम्ब के साथ रह रही हैं या यदि वयस्क पुत्र कुटुम्ब से अलग रह रहा है तो ऐसी कोई वृद्धि नहीं होगी।

9. अतः अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले श्री तारकुण्डे ने यह दलील दी है कि यदि धारा 3(एफ) में कृत्रिम रूप से परिभाषित कुटुम्ब की संकल्पना का धारा 4(1), 4(3) और 7 में अर्थ लगाया जाए तो इसके परिणामस्वरूप घोर असमताएं उत्पन्न होती हैं और उन्होंने इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली घोर असमताओं को निम्नलिखित दृष्टांत देकर स्पष्ट किया है—जिन मामलों में पृथक इकाइयों के स्वामित्वाधीन या पास कोई अपनी भूमि नहीं है वहां धारा 4(1) के अधीन पिता, माता और तीन अप्राप्तवय संतानों से मिलकर बनी कुटुम्ब की प्रमुख इकाई कुटुम्ब के पास अनुज्ञेय क्षेत्र की एक यूनिट रखने में समर्थ होगी चाहे वह 18 एकड़ हो या 27 एकड़ हो या 54 एकड़, किन्तु धारा 7 के स्पष्टीकरण में उपबन्धित रूप

1980(5) eILR(PAT) SC 171

से जोतों को एक साथ मिलाने और उसे धारा 4(3) के साथ पढ़ने के कारण पिता, माता और तीन अप्राप्तवय तथा एक प्राप्तवय पुत्र से जो कि कुटुम्ब के साथ रह रहा हो मिलकर बनी प्रमुख इकाई दो यूनिटें (अर्थात् 36 एकड़ या 54 एकड़ या 108 एकड़) रखने में समर्थ होगी; इसके अलावा पिता, माता और तीन अप्राप्तवय और दो प्राप्तवय पुत्रों वाली, जो कि कुटुम्ब के साथ रह रहे हों, प्रमुख इकाई तीन यूनिटें रखने में समर्थ होगी जब कि पिता, माता और तीन अप्राप्तवय तथा कुटुम्ब के साथ रहने वाले तीन प्राप्तवय पुत्रों से मिल कर बनी प्रमुख इकाई चार यूनिटें रखने में समर्थ होगी और इसी प्रकार असमताएं होती रहेंगी क्योंकि प्राप्तवय पुत्र जो कि पृथक इकाई गठित करते हैं कुटुम्ब के साथ रह रहे होंगे। किन्तु यदि अविवाहित पुत्री या पुत्रियां कुटुम्ब के साथ रह रही हों तो कुटुम्ब के लिए अनुज्ञेय क्षेत्र में वृद्धि नहीं की जाती है या उसे बढ़ाया जाना अनुज्ञात नहीं किया जाता है और यह बात स्पष्ट रूप से विभेदकारी है। यदि वयस्क पुत्र कुटुम्ब के साथ न रह रहा हो तब भी ऐसा ही विभेदकारी परिणाम निकलता है। ऐसा विभेदकारी व्यवहार अधिनियम की धारा 3(एफ) में कुटुम्ब की कृत्रिम परिभाषा के कारण और अनुज्ञेय क्षेत्र नियत करने के लिए दोहरा मानदण्ड विहित किए जाने के कारण ही सम्भव होता है और इसलिए धारा 4, जिसमें अधिकतम सीमा के नियतन के लिए दोहरा मानदण्ड विहित किया गया है, संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करती है।

10. अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने **करीमबिल कुन्हीकोमन** बनाम **केरल राज्य**[1] और **ए० पी० कृष्णासामी नायडू** बनाम **मद्रास राज्य**[2] के मामले में इस न्यायालय के दो विनिश्चयों का अवलम्ब लिया था। उन्होंने यह कहा कि पूर्वकथित मामले में न्यायालय का सरोकार केरल अग्रेरियन रिलेशन्स ऐक्ट, 1961 के उपबन्धों से था जिसमें धारा 2(12) में कुटुम्ब को कृत्रिम रूप से परिभाषित किया गया था जो कि केरल राज्य में प्रवृत्त कुटुम्बों के तीन प्रकारों में से किसी के भी अनुरूप नहीं था और धारा 58 में दोहरा मानदण्ड अपनाकर अधिकतम सीमा नियत की गई थी तथा न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 58(1) से अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता था और चूंकि वह धारा सम्पूर्ण अध्याय 3 का आधार थी, इसलिए सम्पूर्ण अध्याय ही अविधिमान्य होगा। इसी प्रकार दूसरे मामले में न्यायालय मद्रास लैण्ड रिफार्म्स (फिक्सेशन ऑफ सीलिंग ऑन लैण्ड) ऐक्ट, 1961 के सम्बन्ध

[1] [1962] 1 सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 829.
[2] [1964] 7 एस० सी० आर० 82.

में विचार कर रहा था जिसमें कि धारा 3(4) में दी गई कुटुम्ब की परिभाषा को कृत्रिम माना गया था और चूंकि धारा 5(1)(ए) में अधिकतम सीमा नियत करने के लिए दोहरा मानदण्ड अपनाया गया था इसलिए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उसके परिणामस्वरूप एक जैसी परिस्थितियों में के व्यक्तियों के बीच विभेद हुआ था और इसलिए उक्त उपबन्ध से संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता और चूंकि वह अध्याय 2 का आधार था इसलिए सम्पूर्ण अध्याय 2 ही अविधिमान्य होगा। काउन्सेल ने यह तर्क दिया कि इस न्यायालय के इन दो विनिश्चयों का निर्णयाधार स्पष्ट रूप से इस मामले को लागू होता है और चूंकि उक्त उपबन्ध अधिनियम के अध्याय 3 की प्रमुख धाराओं में व्याप्त हैं इसलिए सम्पूर्ण अध्याय ही अभिखण्डनीय होगा।

11. श्री तारकुण्डे की दलील को दो कारणों से स्वीकार करना सम्भव नहीं है। यह ठीक है कि कुटुम्ब की कृत्रिम परिभाषा से सम्बन्धित उपबन्ध तथा इस अधिनियम में अधिकतम सीमा नियत करने के लिए दोहरा मानदण्ड लागू किए जाने से सम्बन्धित उपबन्ध उन्हीं उपबन्धों के समान हैं जो कि केरल अग्रेरियन रिलेशन्स ऐक्ट, 1961 और मद्रास लैण्ड रिफार्म्स (फिक्सेशन ऑन सीलिंग ऑन लैण्ड) ऐक्ट, 1961 में उपबन्धित हैं, किन्तु ऐसा होने पर भी दो प्रभेदनीय बातें हैं जिनके कारण उन दो विनिश्चयों का निर्णयाधार इस मामले को लागू नहीं होगा। प्रथमतः, उन दोनों विनिश्चयों में यह एक स्वीकृत स्थिति थी कि सम्बद्ध अधिनियमितियों को संविधान का अनुच्छेद 31-क लागू नहीं होता था और उन्हें उसका संरक्षण प्राप्त नहीं था और ऐसे संरक्षण के अभाव के कारण ही इस न्यायालय ने अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण के आधार पर उन अधिनियमितियों के सुसंगत उपबन्धों को दी गई चुनौती स्वीकार कर ली थी। प्रथम मामले में प्रतिवेदन के पृष्ठ 833 पर ऐसा स्पष्ट कथन किया गया है कि जहां तक सम्बद्ध अधिनियम उस में के पिटीशनरों को प्रभावित करता था, उसका अनुच्छेद 31-क के अधीन संरक्षण नहीं होता था और उस पर इस आधार पर आक्षेप किया जा सकता था कि उससे पिटीशनरों को संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 द्वारा प्रदत्त अधिकारों का अतिक्रमण होता है। इसी प्रकार दूसरे मामले में प्रतिवेदन के पृष्ठ 84 पर इसी तरह का एक कथन किया गया है कि मद्रास अधिनियम का संविधान के अनुच्छेद 31-क के अधीन संरक्षण नहीं होता है और इस पृष्ठभूमि में ही इस न्यायालय ने अधिनियम के, अनुसूची 3 के साथ पठित धारा 5 के अधीन अधिकतम सीमा और धारा 50 के अधीन

प्रतिकर से सम्बन्धित दो प्रमुख उपबन्धों पर अनुच्छेद 14 के आधार पर किए गए आक्षेप पर विचार किया था। इस मामले में इस बारे में कोई विवाद नहीं किया गया जा सकता है कि प्रमुख अधिनियम (1972 का 26), जैसा कि तत्पश्चात् संशोधित किया गया था, कृषि सुधार विधान का एक स्वरूप है जो कि स्पष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 31-क के अन्तर्गत आ जाता है और इसलिए अधिनियम तथा सम्बद्ध उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31, के आधार पर किए जाने वाले आक्षेप से उन्मुक्त होंगे। दूसरे उक्त दोनों विनिश्चयों में औचित्य के तौर पर राज्य की ओर से अधिकतम सीमा नियत करने में दोहरा मानदण्ड अपनाए जाने और कुटुम्ब की कृत्रिम परिभाषा के सम्बन्ध में, जिसके परिणामस्वरूप विभेदकारी परिणाम उत्पन्न हुए थे, राज्य की ओर से इस न्यायालय के समक्ष कोई सामग्री पेश नहीं की गई थी—और दोनों ही निर्णयों में न्यायालय ने यह बात विनिर्दिष्ट रूप से उल्लिखित की है, जब कि इस मामले में हरियाणा राज्य की ओर से, जैसा कि हम अब दर्शित करेंगे, कुटुम्ब की कृत्रिम परिभाषा और अधिकतम सीमा नियत करने के लिए दोहरा मानदण्ड अपनाए जाने के औचित्य में, न्यायालय के समक्ष पर्याप्त सामग्री पेश की गई है जो कि अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण का खण्डन करती है। राज्य की ओर से योजना आयोग के अधीन भूमि सुधार पैनल की समिति की रिपोर्टों (जनवरी, 1956) से उद्धरणों के रूप में, योजना आयोग के भूमि सुधार खण्ड में तैयार किए गए टिप्पण (1960) से उद्धरणों के रूप में, द्वितीय पंचवर्षीय योजना, कृषि सुधार भूमि पुनर्गठन पर अध्याय 9 से उद्धरणों के रूप में, भूमि जोतों पर अधिकतम सीमा विषयक समिति—योजना आयोग (अप्रैल, 1961) की रिपोर्ट से उद्धरणों के रूप में, भूमि सुधारों पर मुख्य मन्त्रियों के सम्मेलन (26, 27 सितम्बर, 1970) के संक्षिप्त अभिलेख से उद्धरणों के रूप में, भूमि सुधार पर मुख्य मन्त्रियों के सम्मेलन (23 जुलाई, 1972) के संक्षिप्त अभिलेख से उद्धरणों के रूप में तथा मुख्य मन्त्रियों के सम्मेलन (23 जुलाई, 1972) के निष्कर्षों के आधार पर तैयार की गई मार्गदर्शक बातों के रूप में भारत सरकार के कृषि मन्त्रालय द्वारा 1972 में प्रकाशित पी० एस० अप्पू कृत 'सीलिंग ऑन एग्रीकलचरल होल्डिंग्ज' उद्धरणों के रूप में सामग्री इस न्यायालय के समक्ष पेश की गई है जिससे यह प्रकट होगा कि राज्य ने इन प्रश्नों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया था—क्या भूमि की जोतों पर अधिकतम सीमा लागू करने के लिए व्यष्टि के बजाय एक इकाई के रूप में कुटुम्ब को माना जाना चाहिए, कुटुम्ब का आकार क्या होना चाहिए, कुटुम्ब की

कृत्रिम परिभाषा क्यों अपनाई जानी चाहिए और दोहरा मानदण्ड—एक कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के लिए और दूसरा पृथक इकाई की बावत, जब कि वह कुटुम्ब के साथ रह रहे हों—अपनाया जाना क्यों आवश्यक समझा गया था, किस प्रकार का और किन मामलों में (अधिकतम सीमा के लिए) विभिन्न इकाइयों की भूमि का मिलाया जाना विहित किया जाना चाहिए, आदि तथा इस सामग्री पर विचार करने के पश्चात् हम भी यह देखते हैं कि इन सब प्रश्नों पर हमारे ग्रामीण जीवन की सामाजिक और आर्थिक वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए तथा अधिकतम सीमा से सम्बन्धित विधान के असर से बचने के प्रयोजन के निकट सम्बन्धियों के पक्ष में किए गए अन्तरणों को शून्य करने की दृष्टि से विचार किया गया था। यह कहा गया है कि कई अनुकल्पों पर विचार किया था, और हर विकल्प के सामने किसी न किसी प्रकार की कई कठिनाइयां आ रही थीं तथा कोई भी ढंग पूर्ण रूप से दोषमुक्त नहीं था, किन्तु उस कारण से ही मुख्य उद्देश्य को त्यागा नहीं जा सकता था और अन्ततः 23 जुलाई, 1972 को हुए मुख्य मन्त्रियों के सम्मेलन में निकाले गए मतैक्य के आधार पर ही इन जटिल प्रश्नों के सम्बन्ध में कुछ नीति विषयक विनिश्चय किए गए थे। यह कहा गया है कि किसी व्यष्टि के बजाय कुटुम्ब को इकाई मानना इसलिए आवश्यक समझा गया था कि उससे असद्भाविक विभाजन और अन्तरण करके विधि के अपवंचन के क्षेत्र को कम किया जा सकेगा क्योंकि ऐसे संव्यवहार प्रायः कुटुम्ब के सदस्यों के पक्ष में ही किए जाते हैं और यह कि सामान्य तौर पर हमारे देश में ग्रामीण कृषि व्यवस्था में कुटुम्ब प्रमुख इकाई होता है और समस्त भूमि कुटुम्ब की एक ही जोत होती है और इसलिए अधिकतम सीमा भूमि पर व्यक्तिगत रूप से कृषि करने की कुटुम्ब की क्षमता से सम्बन्धित होनी चाहिए। यह कहा गया है कि इन सब पहलुओं को ध्यान में रखते हुए कुटुम्ब की संकल्पना को कृत्रिम रूप से परिभाषित किया गया था और अधिकतम सीमा नियत करने के लिए दोहरा मानदण्ड—एक प्रमुख इकाई के लिए और दूसरा कुटुम्ब के साथ रहने वाले वयस्क पुत्र के लिए अपनाया गया था। वस्तुतः धारा 4(3) की तरह के उपबन्ध का, जिसमें उस दशा में किसी कुटुम्ब के अनुज्ञेय क्षेत्र में वृद्धि करने का उपबन्ध किया गया है जबकि वयस्क पुत्रों के स्वामित्वाधीन कोई अपनी भूमियां न हों और वे कोई अपनी भूमियां धारित न करते हों अपितु वे कुटुम्ब के साथ रह रहे हों, एक गुण यह है कि इससे प्रत्येक कुटुम्ब की दशा में चाहे उसे कोई भी स्वीय-विधि लागू होती हो, ऐसी वृद्धि सुनिश्चित की गई है तथा स्वीय विधि की विभिन्न पद्धतियों से शासित होने वाले वयस्कों पुत्रों के बीच कोई प्रभेद नहीं किया गया है। जहां तक कुटुम्ब से पृथक् रहने

1980(5) eILR(PAT) SC 171

वाले अवयस्क पुत्र का सम्बन्ध है, उसे ठीक ही एक पृथक् इकाई माना गया है जिसे अधिनियम की धारा 9 के अधीन अपनी जोत की बाबत एक पृथक् घोषणा फाइल करनी होगी और चूंकि वह पृथक् रह रहा है इसलिए वह कुटुम्ब की भूमि को निजी रूप से जोतने में कुटुम्ब की क्षमता में कोई योग-दान नहीं करेगा इसलिए कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र में वृद्धि करने के लिए कोई औचित्य नहीं है। काउन्सेल ने यह कहा है कि कुटुम्ब के साथ रहने वाली अविवाहित पुत्री या पुत्रियों के मामले पर सम्भवतः इस दृष्टि से विचार किया गया था कि ऐसे मामले बहुत कम होंगे और यह उप-धारणा की गई थी कि सामान्य अनुक्रम में पुत्री का विवाह हो जाएगा और वह अपने पति की इकाई का सदस्य बन जाएगी और इसलिए कुटुम्ब के साथ रहने वाली प्रत्येक वयस्क पुत्री के लिए अतिरिक्त भूमि देने के लिए कोई पृथक् उपबन्ध नहीं किया गया था। पेश की गई सामग्री और सांविधानिकता के बारे में प्रारम्भिक उपधारणा के आधार पर हमें इस निवेदन में काफी बल प्रतीत होता है। अतः किसी अधिनियमिति को, विशेष रूप से ऐसी अधिनियमिति को जो कि कृषि सुधार के सम्बन्ध में हो और जिसे धनी और निर्धनों के बीच समता लाने या उनके बीच असमता को कम करने के स्पष्ट प्रयोजन के लिए अधिनियमित किया हो, केवल इस कारण से कि उसमें उस बाबत कोई उपबन्ध नहीं किया गया है जिसे कि एक आपवादिक मामला या बहुत कम घटित होने वाली आकस्मिकता माना गया हो, इस आधार पर अभिखण्डित करना सम्भव नहीं होता है कि उससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है। हमारे विचार में राज्य सरकार की ओर से कुटुम्ब की कृत्रिम परिभाषा अपनाने और अधिकतम सीमा नियत करने में दोहरा मानदण्ड अपनाने के लिए औचित्य के तौर पर पेश की गई सामग्री इन उपबंधों पर अनुच्छेद 14 के आधार पर किए गए आक्षेप का खण्डन करने के लिए पर्याप्त है। तथापि, इस मुद्दे को समाप्त करने से पूर्व हम यह मत-व्यक्त करना चाहेंगे कि हरियाणा राज्य को कुटुम्ब के साथ रहने वाली अविवाहित वयस्क पुत्रियों के मामले पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करना चाहिए और उस बारे में ऐसी परित्यक्त पुत्री के मामले पर भी विचार करना चाहिए जो अपने कुटुम्ब में वापस आ गई हो और इसके लिए कुटुम्ब की प्रमुख इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र में ऐसी प्रत्येक अविवाहित वयस्क पुत्री या परित्यक्त पुत्री के लिए कुछ अधिक भूमि देने का उपबन्ध करना चाहिए और उस भूमि को भी किसी अधिकतम सीमा के अध्यधीन किया जा सकता है या हरियाणा राज्य वेस्ट बंगाल लैण्ड रिफार्म्स (अमेंडमेंट) ऐक्ट, 1972 द्वारा तथा संशोधित

1980(5) eILR(PAT) SC 171

वैस्ट बंगाल लैण्ड रिफार्म्स ऐक्ट, 1955 जैसे सदृश विधान से प्रेरणा ले सकता है।

12. अगला उपबन्ध जिस पर कि काउन्सेल ने इस आधार पर आक्षेप किया है कि उससे अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है, धारा 9 है जिसमें ऐसे प्रत्येक व्यक्ति से जिसने नियत दिन को या उसके पश्चात् किसी समय अनुज्ञेय क्षेत्र से अधिक भूमि धारित की हो, विहित कालावधि के भीतर विहित प्राधिकारी को एक घोषणा देने की अपेक्षा की गई है जिसमें उसकी तथा पृथक् इकाई की समस्त भूमि की विहित प्ररूप में और ढंग से तथा उस में उन भूमि खण्डों के चयन के बारे में कथन करते हुए जिन्हें कि वह रखना चाहता है, और जिनका योग अनुज्ञेय क्षेत्र में अधिक न हो, विशिष्टियां देनी होती हैं। उस धारा के स्पष्टीकरण 1 के अधीन यह उपबन्ध किया गया है कि जहां कोई व्यक्ति किसी कुटुम्ब का सदस्य हो वहां वह अपनी घोषणा में अपने द्वारा तथा साथ ही कुटुम्ब के अन्य सदस्यों द्वारा धृत भूमि भी, यदि कोई हो, तथा पृथक् इकाई द्वारा धृत भूमि भी सम्मिलित करेगा। उपधारा (4)(सी) के अधीन कुटुम्ब की दशा में ऐसी घोषणा का पति द्वारा किया जाना या उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी द्वारा किया जाना अथवा दोनों की अनुपस्थिति में अवयस्क संतानों के संरक्षक द्वारा किया जाना अपेक्षित है। यह तर्क दिया गया था कि चूंकि घोषणा करने का अधिकार पति को दिया गया है और साथ ही अनुज्ञेय क्षेत्र के भीतर उन भूमियों के चयन का अधिकार भी उसे दिया गया है जो कि वह रखना चाहता है, इसलिए चयन करते समय पति अपनी पत्नी की भूमि को अधिशेष भूमि के रूप में दे सकता है और यह बात पत्नी के विरुद्ध विभेदकारी है जिसे कि अधिशेष घोषित की गई अपनी भूमि से वंचित किया जा सकता है। हमें इस दलील में कोई सार प्रतीत नहीं होता है। प्रथमतः उस अनुज्ञेय क्षेत्र का चयन जो कि वह रखना चाहता है, मामूली तौर पर इस बात को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा कि कुटुम्ब के पास सर्वोत्कृष्ट तरह की भूमि रहे, चाहे वह पति की हो या पत्नी की हो या भले ही अवयस्क संतानों की हो न कि इस बात को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा कि किस की भूमि का त्याग किया जाना चाहिए। किन्तु मामले के इस पहलू के अलावा, ठीक ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए ही धारा 11(2) अधिनियमित की गई है जिसमें यह उपबन्ध किया गया है कि कुटुम्ब के अनुज्ञेय क्षेत्र के रूप में तथा पृथक् इकाई के अनुज्ञेय क्षेत्र के रूप में इस प्रकार रखी गई भूमि पर कुटुम्ब तथा साथ ही पृथक् इकाई के सदस्यों का उसी अनुपात में स्वामित्व होगा या वह उसी अनुपात में धारित

की जाएगी जिसमें कि अनुज्ञेय क्षेत्र के चयन के पूर्व भूमि पर उनका स्वामित्व था या भूमि उनके द्वारा धारित थी। दूसरे शब्दों में, यदि मात्र जिद् के कारण ही पति को उस भूमि के रूप में जो कि वह अनुज्ञेय क्षेत्र के तौर पर अपने पास रखना चाहता है अपनी ही भूमि का चयन करना हो और वह पत्नी की भूमि को अधिशेष भूमि के रूप में दे दे तो ऐसा वह अपने जोखिम पर ही करेगा क्योंकि अनुज्ञेय क्षेत्र के रूप में इस प्रकार रखी गयी भूमि में उसका तथा उसकी पत्नी का उसी अनुपात में हिस्सा होगा जिसमें कि अनुज्ञेय क्षेत्र के चयन के पूर्व उनकी भूमि पर उनका स्वामित्व था या उन्होंने भूमि धारित की हुई थी। अतः हमारे विचार में अधिनियम की धारा 9(4)(सी) के अधीन चयन के अधिकार को पति को दे दिए जाने से पत्नी के प्रति किसी प्रकार के विभेद का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है।

13. अधिनियम की धारा 8 के प्रति निर्देश से भी श्री ताककुण्डे ने ऐसी ही दलील दी है और वह धारा अनुज्ञेय क्षेत्र से अधिक की भूमि के सद्भाविक अन्तरण के सिवाय, सभी अन्तरणों को, नियत दिन के पश्चात् प्रतिषिद्ध करती है और यह घोषित करती है कि ऐसे अन्तरणों से अधिशेष क्षेत्र के लिए राज्य सरकार के उस अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा जिसका कि वह ऐसे अन्तरण के न होने की दशा में हकदार होती। उपधारा (3) के अधीन यह उपबन्ध किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति नियत दिन के पश्चात् उपधारा (1) के उल्लंघन में कोई भूमि अन्तरित करता है तो इस प्रकार अन्तरित भूमि, अनुज्ञेय क्षेत्र का परिकलन करते समय ऐसे व्यक्ति के स्वामित्वाधीन समझी जाएगी और अनुज्ञेय क्षेत्र से अधिक के उसके अधिशेष क्षेत्र का अवधारण अन्तरण को नजरअन्दाज करते हुए किया जाएगा तथा यदि ऐसे अन्तरण के पश्चात् उसके पास बचा क्षेत्र इस प्रकार परिकलित अधिशेष त्रेत्र के बराबर है तो उसके पास बचे सम्पूर्ण क्षेत्र को अधिशेष क्षेत्र समझा जाएगा जिससे यह अभिप्रेत है कि वह राज्य सरकार में निहित हो जाएगा। श्री तारकुंडे ने यह दलील दी कि ऐसे अविधिमान्य अन्तरण में पति तथा पत्नी की जोतों को एक साथ मिलाने का प्रभाव यह हो सकता है कि उपधारा (1) के उल्लंघन में अपनी भूमि अन्तरित करने वाला पति पत्नी को उस भूमि से वंचित कर देगा जो कि उपधारा (3) के अधीन अधिशेष बन जाती है। यहां भी यदि पति का व्यवहार आत्महित से प्रभावित होता है, जैसा कि सामान्य तौर पर होना चाहिए, तो वह परिवादित प्रकार के क्रियाकलाप अपने जोखिम पर ही करेगा क्योंकि वह न केवल अपनी भूमि को ही मुकदमेबाजी के जोखिम में डालेगा अपितु पत्नी की भूमि से भी वंचित हो जाएगा जो कि अधिशेष बन

जाएगी और राज्य सरकार में निहित हो जाएगी। अनुच्छेद 14 के अधीन पूर्वोक्त उपबन्धों को दी गई चुनौती अवश्य ही विफल होगी।

14. इन अपीलों में कुछ अपीलार्थियों के काउन्सेल श्री फड़के ने कुछ नियमों, विशेष रूप से हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज रूल्स, 1973, जो कि अधिनियम की धारा 31 के अधीन बनाए गए थे, की शक्तिमत्ता को विभिन्न आधारों पर चुनौती दी है। उन्होंने यह दलील दी है कि प्रभावकारी अधिकतम सीमा का अधिरोपण नियमों द्वारा किया गया है न कि अधिनियम की धाराओं द्वारा, यह कि नियम 5(2) अनिवार्य विधायी कृत्य के अत्यधिक प्रत्यायोजन का स्पष्ट दृष्टांत है, नियम 5(2) धारा 4(1) के क्षेत्र और विस्तार से परे है और इसलिए वह उसके अधिकारातीत है, यह सोचना गलत है कि "विहित रीति" नियम 5(2)(ए) में ही देखी जा सकती है न कि नियम 5(1) में और वस्तुत: नियम 5(2)(ए) के क्रियान्वयन से उससे विपरीत बात होती है जो कि नियम 5(1) में अधिकथित है, अर्थात् पहले किसी व्यक्ति की भूमि के विभिन्न प्रवर्गों को "सी" प्रवर्ग में संपरिवर्तित करने और तब उसे इस प्रकार संपरिवर्तित "सी" प्रवर्ग की भूमि के 21.8 हेक्टेयर (=54 एकड़) क्षेत्र का चयन करने के लिए अनुज्ञात करने के बजाय, जिससे कि उसकी शेष भूमि को अधिशेष क्षेत्र समझा जाएगा, नियम 5(2) सर्वप्रथम समस्त सिंचित भूमियों को गलती से "ए" प्रवर्ग में संपरिवर्तित करता है और तब उस में से शेष भूमि को घटाकर यह घोषित करता है कि शेष भूमि "सी" प्रवर्ग की भूमि होगी। इन दलीलों को उचित रूप से समझने के लिए कृषि जोतों पर अधिकतम सीमा के अधिरोपण तथा अनुज्ञेय क्षेत्र के अवधारण से सम्बन्धित नियमों और अधिनियम के उपबन्धों की जांच करना आवश्यक होगा।

15. जैसा कि पहले कहा गया है, अधिनियम की धारा 7 द्वारा ही यह उपबन्ध करके कृषि भूमि पर अधिकतम सीमा अधिरोपित की गई है कि कोई भी व्यक्ति चाहे भूस्वामी के रूप में या अभिधारी के रूप में या सकब्जा बंधकदार अथवा अंशत: एक स्थिति में और अंशत: दूसरी स्थिति में हरियाणा राज्य के भीतर नियत दिन को (24-1-1971) या उसके पश्चात् अनुज्ञेय क्षेत्र से अधिक भूमि धारित करने का हकदार नहीं होगा। धारा 3(1) के अधीन "अनुज्ञेय क्षेत्र" से धारा 4 में इस रूप में विनिर्दिष्ट भूमि अभिप्रेत है। अनुज्ञेय क्षेत्र के अवधारण के प्रयोजन के लिए धारा 4(1) में भूमि तीन प्रवर्गों में विभाजित की गई है और उसमें उक्त प्रवर्गों में से प्रत्येक की बाबत अनुज्ञेय क्षेत्र विहित किया गया है और, जैसा कि पहले कहा गया है, वह

1980(5) eILR(PAT) SC 171

क्षेत्र धारा 4(1)(ए) के अधीन के प्रवर्ग के लिए 7.25 हेक्टेयर (=18 एकड़) है, धारा 4(1)(बी) के अधीन के प्रवर्ग के लिए 10.9 हेक्टेयर (=27 एकड़) है (जिसे नियम 2 के अधीन "बी" प्रवर्ग की भूमि कहा गया है) और धारा 4(1)(सी) के अधीन के प्रवर्ग के लिए 21.8 हेक्टेयर (=54 एकड़) है (जिसे नियम 2 के अधीन "सी प्रवर्ग की भूमि" कहा गया है)। धारा 4(5) में धारा 4(1)(ए) के अन्तर्गत आने वाली भूमि को पुनः दो प्रवर्गों में विभाजित किया गया है—(i) किसी नहर या राजकीय ट्यूबवेल से सिंचित भूमि (जिसे नियम 2 के अधीन "ए प्रवर्ग की भूमि" कहा गया है) तथा (ii) उन ट्यूबवेलों और पम्पिग सेटों आदि से जिन पर किसी प्राइवेट व्यक्ति का स्वामित्व है, सिंचित भूमि (जिसे नियम 2 के अधीन "एए" प्रवर्ग की भूमि कहा गया है) और इन दो प्रवर्गों के बीच परस्पर सम्बन्ध धारा 4(5) में उपदर्शित किया गया है, जो कि इस प्रकार है—

> *"4(5)—उपधारा (1) के खण्ड (क) के प्रयोजन के लिए अनुज्ञेय क्षेत्र का अवधारण करते समय उन ट्यूबवेलों, पम्पिग सेटों आदि से जिन पर किसी प्राइवेट व्यक्ति का स्वामित्व है सिंचित पांच हेक्टेयर भूमि उत्तरी भारत नहर और जल निकास अधिनियम, 1873 (1873 का केन्द्रीय अधिनियम 8) में यथा परिभाषित नहर से अथवा पंजाब स्टेट ट्यूबवेल ऐक्ट, 1954 (1954 का पंजाब अधिनियम, 21) में यथा परिभाषित राजकीय ट्यूबवेल से सिंचित 4 हेक्टेयर भूमि के बराबर होगी।"

धारा 4(4) में वह रीति अधिकथित की गई है जिसमें कि अनुज्ञेय क्षेत्र का अवधारण किया जाएगा और वह इस प्रकार है—

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "4(5). In determining the permissible area for the purpose of clause (a) of sub-section (1), five hectares of land under irrigation from privately owned tubewells, pumping sets, etc., shall be equal to four hectares of land under irrigation from canal as defined in the Northern India Canal and Drainage Act, 1873 (Central Act 8 of 1873) or from State Tube-well as defined in the Punjab State Tubewell Act, 1954 (Punjab Act 21 of 1954)."

*"4(4) अनुज्ञेय क्षेत्र का अवधारण सिंचाई के साधनों पर स्वामित्व, उनकी सघनता और अन्य ऐसी बातों को जो कि विहित की जाएं, ध्यान में रखते हुए विहित रीति से परिकलित किए जाने वाले मूल्यांकन के आधार पर इस शर्त के अधीन रहते हुए किया जाएगा कि कुल वास्तविक जोत 21.8 हेक्टेयर से अधिक न हो।"

दूसरे शब्दों में, किसी व्यक्ति के अनुज्ञेय क्षेत्र के अवधारण के लिए उसके द्वारा धारित भूमियों के मूल्यांकन के लिए इस निमित्त बनाए गए नियमों पर विचार करना अपेक्षित होता है और सुसंगत नियम हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज रूल्स, 1973 का नियम 5(1) और 5(2) हैं क्योंकि धारा 4(4) में केवल यह कथित किया गया है कि मूल्यांकन "विहित रीति" से किया जाना है जिससे कि नियमों द्वारा विहित रीति ही अभिप्रेत होगी। नियम 5(1) इस प्रकार है—

**"5(1) किसी व्यक्ति द्वारा धारित भूमि का मूल्यांकन विभिन्न प्रवर्गों को निम्नलिखित सूत्र के अनुसार "सी" प्रवर्ग की भूमि में संपरिवर्तित करके किया जाएगा—

"ए" प्रवर्ग भूमि की एक यूनिट	=	एए प्रवर्ग भूमि की 1.25 यूनिट	=	बी प्रवर्ग भूमि की 1.5 यूनिट	=	सी प्रवर्ग भूमि की 3 यूनिट

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

* "4. (4) The permissible area shall be determined on the basis of valuation to be calculated in the prescribed manner taking into consideration the ownership of the means of irrigation, their intensity and such other factors as may be prescribed subject to the condition that the total physical holding does not exceed 21.8 hectares."

** 5. (1) The land held by a person shall be evaluated by converting various categories into C category land according to the following formula—

1 Unit of A category land	=	1.25 Unit of AA category land	=	1.5 Unit of B category land	=	3 Units of C category land

1980(5) eILR(PAT) SC 171

ऐसे व्यक्ति को 'सी' प्रवर्ग की भूमि के 21.8 हेक्टेयर के समतुल्य क्षेत्र अनुज्ञेय क्षेत्र के रूप में चुनने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा और शेष भूमि अधिशेष क्षेत्र मानी जाएगी।"

नियम 5(2) इस प्रकार है—

*"5.2 नहर/सरकारी ट्यूबवेलों से सिंचित भूमि—यदि भूमि की सिंचाई नहर या सरकारी ट्यूबवेल से होती है तो—

(क) जहां पर भूमि किसी बारहमासी नहर से सिंचाई के लिए निर्धारित है वहां ऐसी भूमि के क्षेत्र को इसमें इसके पश्चात् उपाबद्ध अनुसूची 'ए' में प्रत्येक नहर के सामने विनिर्दिष्ट सिंचाई सघनता अनुपात के आधे से गुना कर दिया जाएगा। इस प्रकार निकाले गए आंकड़े को 'ए' प्रवर्ग की भूमि माना जाएगा और ऐसी भूमि के शेष क्षेत्र को 'सी' प्रवर्ग की भूमि माना जाएगा :

परन्तु यह कि जहां इस प्रकार निर्धारित सम्पूर्ण क्षेत्र या उसका कोई भाग राजस्व अभिलेख में 'थूर' या 'कल्लर' भूमि के रूप में विहित है वहां इस प्रकार वर्णित क्षेत्र को अनुसूची 'ए' में ऐसी नहर के सामने विनिर्दिष्ट सिंचाई

Such person shall be allowed to select an area equivalent to 21.8 hectares of C category land as permissible area and the remaining land shall be treated as surplus area."

* "5. (2) Land irrigated by Canal/Government Tubewells—In case the land is irrigated by canal or Government tubewell—

(a) Where land is commanded for irrigation by a perennial canal, the area of such land shall be multiplied by half of the irrigation intensity ratio specified against each canal in Schedule A appended hereafter. The figure thus arrived at shall be treated as 'A' category land and the remaining area of such land shall be treated as 'C' category land :

Provided that where the whole or part of the land so commanded prescribed in the revenue record as 'Thur' or 'Kallar', the area so described shall be

सघनता अनुपात के आधे से गुणा कर दिया जाएगा। इस प्रकार निकाले गए आंकड़े को 'बी' प्रवर्ग की भूमि माना जाएगा और ऐसी भूमि के शेष क्षेत्र को 'सी' प्रवर्ग की भूमि माना जाएगा।

(ख) जहां भूमि किसी मौसमी/निर्बन्धित बारहमासी नहर द्वारा सिंचाई के लिए निर्धारित है वहां ऐसी भूमि के क्षेत्र को अनुसूची 'ए' में प्रत्येक नहर के सामने विनिर्दिष्ट सिंचाई सघनता अनुपात से गुणा कर दिया जाएगा। इस प्रकार निकाले गए आंकड़े को 'बी' प्रवर्ग की भूमि माना जाएगा और ऐसी भूमि के शेष क्षेत्र को 'सी' प्रवर्ग की भूमि माना जाएगा :

परन्तु यह कि परिकलन के प्रयोजनार्थ राजस्व अभिलेख में 'थूर' या 'कल्लर' भूमि के रूप में वर्णित भूमि को निर्धारित क्षेत्र से अपवर्जित कर दिया जाएगा और उसे 'सी' प्रवर्ग की भूमि माना जाएगा।

---

multiplied by half of the irrigation intensity ratio specified against such canal in Schedule 'A'. The figure thus arrived at shall be treated as 'B' category land and the remaining area of such land shall be treated as 'C' category land;

(b) Where land is commanded for irrigation by a non-perennial/restricted perennial canal, the area of such land shall be multiplied by the irrigation intensity ratio specified against each canal in Schedule 'A'. The figure thus arrived at shall be treated as 'B' category land and the remaining area of such land shall be treated as 'C' category land :

Provided that the extent of land described in the revenue record as 'thur' or 'Kallar' shall be excluded from the cammanded area for the purpose of calculations and shall be treated as 'C' categor y land.

(ग) जहां भूमि किसी सरकारी ट्यूबवेल से सिंचाई के लिए निर्धारित हो वहां ऐसी भूमि के क्षेत्र को अनुसूची 'ए' में सरकारी ट्यूबवेल के सामने विनिर्दिष्ट सिंचाई सघनता अनुपात के आधे से गुणा कर दिया जाएगा। इस प्रकार निकाले गए आंकड़े को 'ए' प्रवर्ग की भूमि माना जाएगा और ऐसी भूमि के शेष क्षेत्र को 'सी' प्रवर्ग की भूमि माना जाएगा।

(घ) जहां नहर के पानी से या सरकारी ट्यूबवेल से सिंचित भूमि में किसी प्राइवेट व्यक्ति के स्वामित्वाधीन के ट्यूबवेल या पम्पिग सेट, कुएं अथवा अन्य स्रोतों से लिए गए पानी से भी सिंचाई होती है वहां उपनियम (3) या उपनियम (4) के उपबन्धों के अनुसार एए प्रवर्ग की भूमि माने गए क्षेत्र को पूर्वोक्त यथा स्थिति खण्ड (क), खण्ड (ख) या खण्ड (ग) के अधीन अवधारित भूमि में जोड़ दिया जाएगा।" अधिसूचना सं० सा० का० नि० 222/एच० ए० 26/72/एस० 31 (4)/76 तारीख 15-10-76 द्वारा प्रतिस्थापित।

(c) Where land is commanded for irrigation by a Government tubewell, the area of such land shall be multiplied by half of the irrigation intensity ratio specified against Government tubewell in Schedule 'A'. The figure thus arrived at shall be treated as 'A' category land and the remaining area of such land shall be treated as 'C' category land.

(d) Where irrigation by canal water or Government tubewell is supplemented, by water drawn from privately owned tubewell, pumping set, well or other sources, the area treated as 'AA' category land in accordance with the provisions of sub-rule (3) or sub-rule (4) shall be added to the land determined under the aforesaid clause (a), clause (b) or clause (c). as the case may be."

अपीलार्थी के काउन्सेल ने प्रारम्भ में यह तर्क दिया कि अधिकतम सीमा का प्रभावशील अधिरोपण नियम 5(1) और 5(2) द्वारा किया गया था, न कि अधिनियम की धारा 4 द्वारा क्योंकि अनुज्ञेय क्षेत्र के अवधारण के लिए किए जाने वाले मूल्यांकन के आधार का उपबन्ध नियमों द्वारा किया गया है न कि धारा द्वारा और चूंकि अनुज्ञेय क्षेत्र के विस्तार का नियतन अनिवार्यतः एक विधायी कृत्य है इसलिए उसका कार्यपालिका को प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता था और यह बात अनिवार्य विधायी कृत्य के प्रत्यायोजन का एक स्पष्ट दृष्टान्त है और इसलिए अधिनियमिति अभिखण्डनीय है। इस कारण से ही इस दलील को स्वीकार करना असम्भव है कि अनुज्ञेय क्षेत्र के विस्तार का नियतन वस्तुतः धारा 4(1) द्वारा ही किया गया है क्योंकि उक्त उपबन्ध में भूमि को तीन प्रवर्गों में विभाजित करने के अलावा इन तीन प्रवर्गों में से प्रत्येक की बाबत अनुज्ञेय क्षेत्र का विस्तार विहित और नियत किया गया है और वह विस्तार प्रत्येक प्रवर्ग के सामने उल्लिखित किया गया है तथा अनुज्ञेय क्षेत्र के अवधारण के लिए किए जाने वाले मूल्यांकन का आधार मात्र ही नियमों द्वारा विहित करने के लिए छोड़ा गया है। अतः इस दलील में कोई सार नहीं है।

16. आगे उन्होंने यह दलील दी कि नियम 5(2)(ए) अधिनियम की धारा 4(1) की परिधि से बाहर जाता है क्योंकि उसके लागू किए जाने के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति का अनुज्ञेय क्षेत्र 21.5 हेक्टेयर (=54 एकड़) से घटकर केवल 13.88 हेक्टेयर (=34 एकड़) रह जाता है, जैसा कि नियम 5(2)(ए) के अधीन दिए गए दृष्टान्त सं० 1 से स्पष्ट होगा और इस प्रकार यह नियम धारा 4(1) के अधिकारातीत है। उन्होंने यह तर्क भी दिया कि विहित रीति नियम 5(1) और 5(2) में दी गई है किन्तु उनके कार्यकरण में नियम 5(2) से उस बात के विपरीत परिणाम निकलता है जो कि नियम 5(1) में अधिकथित है। हमारे विचार में ये दलीलें इन नियमों की क्रियात्मक भूमिका के बारे में भ्रान्ति तथा नियम 5(2)(ए) के अधीन दिए गए प्रथम दृष्टान्त के सही अभिप्राय की बाबत भ्रान्ति के कारण दी गई हैं।

17. प्रारम्भ में हम यह उल्लेख कर दें कि यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि वे तीन प्रवर्ग जिनमें कि धारा 4(1) में अनुज्ञेय क्षेत्र के अवधारण के लिए भूमि को विभाजित किया गया है एक दूसरे को अपवर्जित करते हैं और मामूली तौर पर यदि कोई भी भूधारक यह सिद्ध करने में समर्थ हो कि उसके द्वारा धारित भूमि अनन्यतः किसी एक या दूसरे प्रवर्ग में आती है तो

उसके अनुज्ञेय क्षेत्र का अवधारण सीधे ही प्रत्येक प्रवर्ग के सामने उस धारा में विनिर्दिष्ट विस्तार द्वारा अवधारित किया जाएगा और जब किसी भी भूधारक के पास एक से अधिक प्रवर्ग की भूमि हो तभी उसके अनुज्ञेय क्षेत्र का अवधारण नियम 5(1) और 5(2) के साथ पठित धारा 4(4) में विहित रीति से किए जाने वाले मूल्यांकन के आधार पर किया जाना होगा। यह बात नियम 5(1) के इन प्रारम्भिक शब्दों से स्पष्ट हो जाती है "किसी व्यक्ति द्वारा धारित भूमि का मूल्यांकन विभिन्न प्रवर्गों को निम्नलिखित सूत्र के अनुसार 'सी' प्रवर्ग की भूमि में संपरिवर्तित करके किया जाएगा।" दूसरे शब्दों में नियम 5(1) और 5(2) केवल तभी लागू होते हैं जब कि किसी भूधारक के पास विभिन्न प्रवर्गों की भूमियां हों। इसके अलावा इस बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता है कि विहित रीति दोनों ही नियमों अर्थात् नियम 5(1) और 5(2) में देखी जा सकती है न कि केवल किसी एक या दूसरे नियम में; किन्तु यह स्पष्ट है कि दोनों नियमों में भिन्न-भिन्न विषयों की बाबत उपबन्ध किया गया है और वे भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रवृत्त होते हैं; जब कि नियम 5(1) में समीकरण सूत्र विहित करके भूमि के विभिन्न प्रवर्गों के बीच परस्पर सम्बन्ध उपदर्शित किया गया है, नियम 5(2) में अनुसूची में उल्लिखित सरकारी नहरों या ट्यूबवेल में से प्रत्येक के सामने विनिर्दिष्ट और साथ ही प्राइवेट व्यक्तियों के स्वामित्वाधीन ट्यूबवेलों और पम्पिंग सेटों की दशा में सिंचाई सघनता अनुपात के प्रति निर्देश से विभिन्न प्रवर्गों की भूमि के लिए सही आंकड़े निकालने के लिए गणितीय सूत्र का उपबन्ध किया गया है, किन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि नियम 5(2) के अधीन दृष्टान्त देते समय नियम 5(1) को नजरअंदाज कर दिया गया है; वस्तुतः नियम 5(2)(ए) के अधीन दिए गए प्रथम दृष्टान्त में गणितीय सूत्र लागू करते समय नियम 5(1) में उल्लिखित परस्पर सम्बन्ध को ध्यान में रखा गया है और इस बात का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है कि नियम 5(2)(ए) के प्रवर्तन से उससे विपरीत परिणाम निकलते हैं जो कि नियम 5(1) में अधिकथित है। इसके अलावा यदि नियम 5(2)(ए) के अधीन दिए गए प्रथम दृष्टांत का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट होगा कि नियम 5(2)(ए) के अधिनियम की धारा 4(1) की परिधि से बाहर जाने जैसी कोई बात नहीं है, जैसी कि दलील दी गई है और किसी व्यक्ति के अनुज्ञेय क्षेत्र के 21.8 हेक्टेयर से घटकर 13.88 हेक्टेयर हो जाने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है, जैसा कि सुझाव दिया गया है। उस दृष्टांत में कुछ आधारभूत तथ्यों के अर्थात् इस बात के विद्यमान होने की धारणा की गई है कि कोई व्यक्ति बारहमासी नहर

से सिंचाई के लिए निर्धारित 25 हेक्टेयर भूमि धारण करता है, जिसका सिंचाई सघनता अनुपात 57 प्रतिशत है और इन तथ्यों के आधार पर उस दृष्टांत में उसका अनुज्ञेय क्षेत्र निकाला गया है। सबसे पहले नियम 5(2)(ए) में दिए गए गणितीय सूत्र को लागू करके ए प्रवर्ग की भूमि के विस्तार को 7.12 हेक्टेयर संगणित किया गया है (प्रसंगवश यही तथ्य कि 57 प्रतिशत सिंचाई सघनता अनुपात रखने वाली 25 हेक्टेयर भूमि में, जो कि बारहमासी नहर से सिंचाई के लिए निर्धारित हो, 'ए' प्रवर्ग की 7.12 हेक्टेयर तक की भूमि समाविष्ट हो सकती है, अपीलार्थियों के काउन्सेल की इस दलील का खण्डन कर देता है कि 'ए' प्रवर्ग की भूमि होने के लिए नहर का सिंचाई सघनता अनुपात 200 प्रतिशत प्रति वर्ष होना चाहिए या 'बी' प्रवर्ग की भूमि होने के लिए नहर का सिंचाई सघनता अनुपात 100 प्रतिशत प्रति वर्ष होना चाहिए या 100 प्रतिशत प्रति वर्ष सघनता अनुपात से कम की नहरों से सिंचित भूमि को 'सी' प्रवर्ग की भूमि ही माना जाएगा)। अतः 25 हेक्टेयर में से एक प्रवर्ग की भूमि के रूप में 7.12 हेक्टेयर भूमि घटाने पर शेष 17.88 हेक्टेयर भूमि को 'सी' प्रवर्ग की भूमि कहा गया है। इसके पश्चात् नियम 5(1) में दिए गए समीकरण सूत्र को लागू करके 25 हेक्टेयर की उसकी सम्पूर्ण जोत को 'सी' प्रवर्ग की कल्पित भूमि में संपरिवर्तित कर दिया जाता है (7.12 को 3 से गुणा करने पर 21.36 आएगा जिसमें कि 17.88 जोड़ दिया जाएगा) जो कि 39.24 आती है। किन्तु वस्तुतः वह केवल 25 हेक्टेयर ही धारण करता है। अतः इन तीन प्रवर्गों विषयक नियम को लागू करके उसका अनुज्ञेय क्षेत्र 'सी' प्रवर्ग की भूमि में 13.88 हेक्टेयर होगा और शेष 11.12 हेक्टेयर भूमि को अधिशेष घोषित किया गया है। 'सी' प्रवर्ग की भूमि को 21.8 हेक्टेयर से घटाकर 13.88 नहीं किया जाता है, जैसी कि दलील दी गई है, क्योंकि यदि भूधारक को धारा 4(1) या केवल नियम 5(1) लागू करके 25 हेक्टेयर में से 21.8 हेक्टेयर 'सी' प्रवर्ग की भूमि के रूप में अनुज्ञात की जाती है तो इससे इस तथ्य की अवहेलना हो जाती है कि उसकी कुल जोत में से 7.12 हेक्टेयर भूमि में ए प्रवर्ग की भूमि का गुण है और इसलिए उसे 21.8 हेक्टेयर 'सी' प्रवर्ग की भूमि देना स्पष्ट रूप से गलत होगा। अतः हमारे विचार में हरियाणा सीलिंग ऑन लैण्ड होल्डिंग्ज रूल्स, 1973 के नियम 5(2) को दी गई चुनौतियों में से किसी में भी कोई सार नहीं है।

18. अपीलार्थियों के काउन्सेल ने यह हल्का सा तर्क दिया कि उस अधिशेष भूमि की बाबत धारा 16 में विनिर्दिष्ट संदेय प्रतिकर जो कि अर्जित

1980(5) eILR(PAT) SC 171

की जाती है या राज्य सरकार में निहित हो जाती है, भ्रामक है। हम यह देखते हैं कि ऐसी अधिशेष भूमि के लिए संदेय रकम जो कि राज्य सरकार में निहित हो जाती है, धारा 16(1) के नीचे दी गई सारणी में दर्शित दरों पर परिकलित की जाएगी और यह स्पष्ट है कि ये दरें भूमि की वास्तविक क्वालिटी और उसकी उपज पर आधारित है तथा इसे भ्रामक नहीं कहा जा सकता है। किसी भी दशा में हमारे समक्ष ऐसी कोई सामग्री पेश नहीं की गई है जिससे हम यह अनुमान लगा सकें कि सारणी में दर्शित दरों के परिणामस्वरूप भ्रामक प्रतिकर निर्धारित होता है।

19. अगला उपबन्ध जिसको कि असांविधानिक उपबन्ध के तौर पर चुनौती दी गई है, धारा 18(7) में अन्तर्विष्ट है जो यह शर्त अधिरोपित करता है कि अपील या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा किसी अपील या पुनरीक्षण के ग्रहण किए जाने के पूर्व विवादास्पद क्षेत्र की बाबत संदेय भूमि जोत कर के 30 गुने के बराबर राशि जमा कराई जानी है—यह उपबन्ध अधिनियम में 1976 के संशोधन अधिनियम 40 द्वारा पुरःस्थापित किया गया है। धारा 18(1), (2) में विहित प्राधिकारी के आदेश से अपील, पुनर्विलोकन और पुनरीक्षण का उपबन्ध किया गया है तथा स्थिति यह थी कि 1976 के पूर्व कानून द्वारा अपील/पुनरीक्षण उपचार पर कोई नियंत्रण नहीं लगाया गया था तथापि 1976 के हरियाणा अधिनियम 40 द्वारा किए गए संशोधनों द्वारा उपधारा (7) और (8) जोड़ी गई थीं और नई पुरःस्थापित उपधारा (7) में प्रथम बार यह शर्त अधिरोपित की गई थी कि उपधारा (1) और (2) के अधीन सब अपीलें और उपधारा (4) के अधीन पुनरीक्षण केवल तभी ग्रहण किए जाएंगे जब कि अपीलार्थी या पिटीशनर अपील या पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष विवादास्पद अधिशेष की बाबत संदेय भूमि जोत कर के 30 गुने के बराबर राशि जमा करा दे। उपधारा (8) के अधीन यह उपबन्ध किया गया था कि यदि भूमि अधिशेष घोषित करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील या पुनरीक्षण करने वाला अपीलार्थी या पिटीशनर अपनी अपील या पुनरीक्षण में विफल हो जाएगा तो वह उस कालावधि के लिए जिसके दौरान किसी भी समय उस अधिशेष घोषित भूमि पर उसका कब्जा था जिसका कि वह विधि के अधीन हकदार नहीं था कब्जा रखेगा तो वह इस क्षेत्र की बाबत वसूलीय भूमि जोत कर के 30 गुने के बराबर अनुज्ञप्ति शुल्क देने के दायित्वाधीन होगा। 6 जून, 1978 को इस अधिनियम में 1978 के संशोधन अधिनियम 18 द्वारा पुनः संशोधन किया गया था जिसके द्वारा उपधारा (7) द्वारा अधिरोपित शर्त की कठोरता को, अपीलार्थी या पिटीशनर को नकद निक्षेप के अनुकल्प के

1980(5) eILR(PAT) SC 171

तौर पर अपेक्षित रकम के लिए बक गारण्टी देने के लिए अनुज्ञात करके, कम कर दिया गया था और जब कि उपधारा (8) को उसके मूल रूप में रखते हुए ही, एक नई उपधारा (9) अन्तःस्थापित की गई थी जिसमें यह उपबन्ध किया गया है कि अपील या पुनरीक्षण के सफल हो जाने पर जमा कराई गई रकम या दी गई बैंक गारण्टी यथास्थिति लौटा दी जाएगी या उन्मोचित कर दी जाएगी, किन्तु यदि अपील या पुनरीक्षण विफल हो जाए तो निक्षेप या गारण्टी उपधारा (8) के अधीन वसूलीय अनुज्ञप्ति शुल्क के प्रति समायोजित कर ली जाएगी। उच्च न्यायालय में दो दलीलें दी गई थीं—प्रथमतः, यह कि 1972 में मूलतः अधिनियमिति धारा 18(1) और (2) विहित प्राधिकारी या अपील प्राधिकारी के आदेशों के विरुद्ध अपील और पुनरीक्षण या अनिर्बन्धित तथा बिना किसी शर्त के अधिकार प्रदान करती थी किन्तु 1976 के अधिनियम 40 द्वारा उपधारा (7) और (8) के पुरःस्थापन से इस अनिर्बन्धित अधिकार पर नियंत्रण लगा दिया गया था जो कि असांविधानिक था; दूसरे, 1878 के अधिनियम 18 द्वारा शर्त में ढील देने से भी असांविधानिकता का दोष दूर नहीं हुआ या क्योंकि संशोधित उपधारा (7) के अधीन अधिरोपित शर्तें भी इतने दुर्भर स्वरूप की थीं कि या तो उनके द्वारा अपील का निहित अधिकार वस्तुतः छीन लिया गया था या किसी भी दशा में वह भ्रामक बन गया था। उच्च न्यायालय ने इन दोनों दलीलों को नामंजूर कर दिया था और हमारे विचार में ठीक ही किया था।

20. इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों से यह सुस्थापित है कि अपील का अधिकार कानून द्वारा सृजित किया जाता है और इस बात के लिए कोई कारण नहीं है कि यह अधिकार देते समय विधानमण्डल ऐसे अधिकार के प्रयोग के लिए शर्तें अधिरोपित क्यों नहीं कर सकता है, बशर्ते कि शर्तें इतनी दुर्भर न हों कि वे अनुचित निर्बन्धन की कोटि में आती हों जो कि अधिकार को लगभग भ्रामक ही बना दें। (देखिए **अनन्त मिल्स लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य**[1] वाला हाल ही का विनिश्चय)। तथापि अपीलार्थियों के काउन्सेल ने यह दलील दी कि अधिरोपित शर्तों को अनुचित रूप से दुर्भर माना जाना चाहिए, विशेष रूप से जबकि अपील या पुनरीक्षण प्राधिकारी को ठीक तथा उचित मामलों में शर्तों में ढील देने या उन्हें अधित्यक्त करने या उनकी बाबत

---

[1] [1975] 2 उम० नि० प० 951=ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 12.

छूट प्रदान करने के लिए कोई विवेकाधिकार नहीं दिया गया है और इसलिए अधिरोपित नियंत्रण को असांविधानिक माना जाना चाहिए और उसे अभिखण्डित कर दिया जाना चाहिए। कई कारणों से इस दलील को स्वीकार करना सम्भव नहीं है। प्रथमतः, शर्त अधिरोपित करने का उद्देश्य स्पष्ट रूप से उन निरर्थक अपीलों और पुनरीक्षणों को रोकना है जो कि अधिकतम सीमा विषयक नीति के क्रियान्वयन में बाधा डालती हों, दूसरे, उपधारा (8) और (9) को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि नकद निक्षेप या बैंक गारण्टी किसी आहरण के तौर पर नहीं है अपितु उस व्यक्ति से अन्तःकालीन लाभ प्राप्त करने के लिए है जिसके बारे में अन्ततः यह पाया जाए कि भूमि पर उसका विधिविरुद्ध कब्ज़ा था; तीसरे, निक्षेप या गारण्टी का भूमि जोतकर (कर के 30 गुना) से सम्बन्ध स्थापित किया गया है जो कि, हमें बताया गया है, हरियाणा राज्य में 8 रुपये प्रति एकड़ वार्षिक की मामूली सी रकम के लगभग ही रहता है; चौथे, किया जाने वाला निक्षेप या दी जाने वाली बैंक गारण्टी विवादास्पद क्षेत्र अर्थात् उस क्षेत्र या उसके भाग की बाबत, जिसे कि अपीलार्थी या पिटीशनर के पास अनुज्ञेय क्षेत्र छोड़ने के पश्चात् अधिशेष घोषित किया जाए, संदेय भूमि कर तक ही परिसीमित है। इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से संदेय वार्षिक भूमि कर की मामूली सी रकम को ध्यान में रखते हुए, अपील/पुनरीक्षण प्राधिकारी को शर्त में ढील देने या उसे अधित्यक्त करने के लिए विवेकाधिकार प्रदत्त करते हुए किसी उपबन्ध के अभाव में भी अपील/पुनरीक्षण के अधिकार पर लगाया गया नियंत्रण दुर्भर या अनुचित नहीं माना जा सकता। अतः धारा 18(7) को दी गई चुनौती विफल होगी।

21. यह उल्लेखनीय है कि **कुंजुकुट्टी साहिब वाले मामले**[1] का अवलम्ब लेते हुए अपीलार्थियों के काउन्सेल ने अधिनियम की धारा 8(3) को भी इस आधार पर चुनौती दी थी कि इससे अनुच्छेद 31-क के दूसरे परन्तुक का अतिक्रमण होता है। उक्त उपबन्ध सहित अधिनियम को नवम् अनुसूची में सम्मिलित कर लिया गया है इसलिए उसे अनुच्छेद 31-ख का संरक्षण प्राप्त होगा और चूंकि अनुच्छेद 31-ख की सांविधानिक विधिमान्यता की बाबत दी गई चुनौती के बारे में पृथक् रूप से विचार किया जा रहा है, इसलिए यहां पर उस दलील के सम्बन्ध में विचार करना अनावश्यक है।

---

[1] [1972] 3 उम० नि० प० 340=[1973] 1 एस० सी० आर० 326.

22. परिणामस्वरूप सिविल अपीलें, रिट पिटीशन और विशेष इजाजत पिटीशन खर्चे सहित खारिज किए जाते हैं जिनकी रकम एक सेट में 5,000 रुपये निर्धारित की जाती है, जिसे सब मिलकर वहन करेंगे।

अपीलें, रिट पिटीशन और विशेष
इजाजत पिटीशन खारिज किए गए।

ज०/